राष्ट्रीय छात्रशक्ति

वर्ष 31 | अंक 5 | मई 2010 | नई दिल्ली | मूल्य 5 रु. | पेज 36

भारतीय संस्कृति का महाकुम्भ

छेड़ना होगा नक्सलवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष

अभाविप के प्रतिनिधिमण्डल की नंदन निलेकनी से भेंट। चित्र में बाएं से नंदन निलेकनी, ज्ञापन देते हुए रविरंजन, श्रीरंग कुलकर्णी एवं सुनील बंसल

नवादा में विद्यार्थी परिषद् के कार्यालय का उद्घाटन करते हुए सहसरकार्यवाह मा. दत्तात्रेय होसबोले

राष्ट्रीय छात्रशक्ति

शिक्षा क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

सम्पादक:
आशुतोष

सम्पादक मण्डल:
संजीव कुमार सिन्हा
आशीष कुमार 'अंशु'
उमाशंकर मिश्र

फोन : 011-43098248
E-mail : chhatrashakti@gmail.com
Website : www.abvp.org

मुद्रक और प्रकाशक राजकुमार शर्मा द्वारा अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के लिए अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् बी-50, विद्यार्थी सदन, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट कैम्पस, यूनिवर्सिटी एरिया, दिल्ली-110007 के लिए प्रकाशित एवं मॉडर्न प्रिन्टर्स, के.30 नवीन शाहदरा, दिल्ली. 32 द्वारा मुद्रित

अनुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय		4
आस्था का महापर्व	• अरुण कान्त त्रिपाठी	5
पुस्तक अंश: प्रारम्भ से ही भटकता रहा नक्सलबाड़ी आन्दोलन		9
दस्तावेज : शिक्षा प्रसार योजना		11
सामाजिक समरसता के अग्रदूत : सावरकर	• आशुतोष	12
अंग्रेजियत की विषवेल का उन्मूलन एक समसामयिक आवश्यकता	• अतुल कोठारी	16
मेरी स्मृतियां	• अतुल कोठारी	18
दिल्ली विश्वविद्यालय से निकलता जहर		20
शिक्षा के बाजारीकरण की पाठशाला	• उमाशंकर मिश्र	21
राष्ट्रविरोधी तत्वों से लड़ने का साहस अभाविप का स्वाभाविक गुण-दत्तात्रेय होसबोले		23
साढ़े तीन साल में डॉक्टर बनाने की कैसी तरकीब	• आशीष अंशु	24
आदिवासियों के बीच शिक्षा का दीप	• आशीष अंशु	26
आईपीएल यानि खेल के पीछे का खेल	• आशुतोष	27
कदम -कदम पर लड़ेंगे तुमसे	• आशुतोष	29
छेड़ना होगा आतंकवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष	• आशुतोष	30
शैक्षिक परिदृश्य : यूपीए सरकार का प्रतिगामी कदम		33
स्मृति मंजूषा		34

वैधानिक सूचना: राष्ट्रीय छात्रशक्ति में प्रकाशित लेख एवं विचार रचनाओं में व्यक्त दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखकों के हैं। सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त प्रकार के विवादों का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

संपादकीय

हाल ही में हरिद्वार में सम्पन्न हुआ कुम्भ इस सदी का हरिद्वार में होने वाला पहला और सबसे बड़ा आयोजन था। 14 अप्रैल, वैशाखी के दिन सर्वाधिक 1 करोड़ 60 लाख लोगों ने गंगास्नान कर एक कीर्तिमान ही रच दिया। विश्व के माने हुए प्रबंधन गुरु भी कुम्भ के इस स्वयमेव प्रबन्धन को देख दांतो तले उंगली दबा लेते हैं। इसकी आंखों देखी रपट दे रहे हैं परिषद् के पूर्व कार्यकर्ता अकात्रि।

नक्सलवाद के खिलाफ जारी अभियान अब गंभीर दौर में पहुंच गया है। इस दौरान नक्सलवादियों के मुकाबले पुलिस और अर्धसैनिक बल के मरने वाले जवानों की संख्या कहीं ज्यादा है। आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2010 में 1 जनवरी से 3 मई तक हुई आतंकवादी घटनाओं में कुल 633 लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा जिनमें केवल नक्सलवाद-माओवाद के शिकार हुए लोगों की संख्या है 348। इनमें भी 87 चरमपंथी हैं और 137 सशस्त्र बल के जवान। 124 निर्दोष नागरिक भी इन घटनाओं में मारे गए।

गत वर्ष के आंकड़े भी इससे कुछ भिन्न नहीं हैं। नक्सलवादी-वामपंथी हिंसा में मरने वाले 998 लोगों में 294 चरमपंथी और 312 सशस्त्र बल के जवान हैं। 392 नागरिक भी इस वामपंथी हिंसा में काल-कवलित हुए।

दंतेवाड़ा में नक्सलवादियों द्वारा केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के 76 जवानों की हत्या के तीन दिन बाद दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में उनकी मौत पर जश्न मनाया गया। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के कार्यकर्ताओं द्वारा इसका विरोध किए जाने पर अभाविप के कार्यकर्ताओं को कुछ नक्सल समर्थक छात्र-छात्राओं ने घेर कर हमला कर दिया। इस हमले में परिषद् के इकाई सचिव और उपाध्यक्ष समेत चार कार्यकर्ता घायल हुए। अंदर के पृष्ठों पर आतंकवाद और नक्सलवाद की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने वाला लेख सम्भवत: समस्या को गहराई से समझने में मदद करेगा।

केन्द्रीय मंत्री जयराम रमेश द्वारा दीक्षांत समारोह के अवसर पर पहने जाने वाले चोगे को उपनिवेशी बर्बरता की निशानी बताने के बाद इस पर एक बहस चल पड़ी है। अनेक बुद्धिजीवियों द्वारा इस पर की गई टिप्पणियों को समेटने वाला विश्लेषणात्मक लेख देश के बुद्धिजीवियों की सोच को भी स्पष्ट करता है।

स्थायी स्तंभ दस्तावेज, मेरी स्मृतियां, पुस्तक अंश तथा प्रेरणा द्वारा पत्रिका को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है। इकाइयों के समाचार परिसरों की अद्यतन गतिविधियों से आपको परिचित कराएंगे।

अगले अंक से 'पाठकों के पत्र' स्तंभ भी प्रारंभ किया जा रहा है। आपके द्वारा भेजे गए उल्लेखनीय पत्र इस स्तम्भ के अंतर्गत प्रकाशित किए जाएंगे। साथ ही आपके सुझाव पत्रिका के कलेवर को पाठकोपयोगी बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

-सम्पादक

आस्था का महापर्व

अमिय झरत.....

■ अरुण कान्त त्रिपाठी

ऋषि भूमि हरिद्वार में लगातार 120 दिनों तक अनवरत चलने वाला महाकुम्भ पर्व अपनी तमाम खूबियों के साथ देश-विदेश के करोड़ों लोगों को आस्था में रंगकर सम्पन्न हो गया। 14 जनवरी 2010 को प्रात: 3.33 बजे से आरम्भ होकर विश्व का सबसे बड़ा मेला अधिकारिक रूप से 28 अप्रैल को आस्था, विश्वास और समानता का अभूतपूर्व संदेश देकर भारत को एक इतिहास सें परिचित करा गया। हर की पैड़ी पर अविरल गंगा का प्रवाह 21वीं शताब्दी के इस पहले महाकुम्भ द्वारा नई पीढ़ी को भारत के ज्ञान, धर्म, दर्शन और उसकी सांस्कृतिक एकात्मता से परिचित कराने का निमित्त बना। गंगा की गोद में आकर देशी हो या विदेशी, सबसे मुंह से बरबस ये ही निकलता रहा-अद्‌भुत-अकल्पनीय-शानदार...!

भारत के जन-मन की आध्यात्मिक भावना से जुड़ा यह महापर्व अपने देश की सामाजिक, सांस्कृतिक अवधारणाओं की झांकी बनकर भरत खंड की नई पीढ़ी के रग-रग में समा गया। गंगा के तट पर उमड़े युवाओं को यह महाकुम्भ प्राचीनतम लोकपर्व की एक ऐसी झांकी संजोकर गया जो कि उनके मन में सदैव अंकित रहेगा। अमृतपर्व महाकुम्भ ने गंगा की धारा के हर तट पर अपने मानस पुत्रों को वसुधैव कुटुम्बकम के साथ ही राष्ट्रीय एकात्मा की भावना से भर दिया।

14 जनवरी को प्रात: साढ़े चार बजे जब मैं हर की पैडी पर पहुंचा तब महाकुम्भ के स्नान पर्व का वह प्रथम दिन था। गंगा की अविरल कल-कल करती धारा को मेघाच्छित कोहरे ने अपने आगोश में ले रखा था। सभी प्रमुख घाटों पर सुरक्षा बलों के अतिरिक्त मेरे साथ एक-दो मीडिया से जुड़े लोग कांपते हुए स्नान करने आने वालों की बाट जोह रहे थे। मैं भी आश्चर्य में था। प्रयाग तट पर संगम के किनारे उस समय लाखों लोग डुबकियां लगा रहे थे और कुम्भ का तट निर्जन था। देखते ही देखते प्रात: के पांच बज गए। अचानक गंगा मैया की जय के साथ कुछ युवाओं का दल गंगा की गोद में समा गया। बर्फ सदृश जल से निकल कर जब ये दल बाहर आया तो सबकी निगाहों का केन्द्र बन गया। ये युवा थे आईआईटी रूड़की के छात्र जो पहले ही दिन कुम्भ को देखने-जानने-समझने आए थे। अभी उनसे चर्चा हो ही रही थी कि अचानक करीब 10 से 15 हजार लोगों का जत्था गंगा के जल में समाहित हो गया। उसके बाद तो गंगा के तट पर आस्था का जो संगम रचा गया वह एक अनकही किवदंती बन गया। इस सबके बीच आईआईटी के वे युवा कौतुहल से लोगों को स्नान करते देखने लगे। पंजाब के तरनतारन से पूरा कुनबा ही गंगा में स्नान के बहाने मां की गोद में अठखेलियां करने लगा। न तो किसी को कपड़ों की परवाह थी न ही कोहरे और ठंड की। वे छात्र इन हजारों लोगों को निहार रहे थे क्योंकि उनमें अधिकांश जींस और टीशर्ट पहने आधुनिक युवा थे। ऐसे तमाम वाकये 14 जनवरी से लेकर 14 अप्रैल तक मेरे सामने आते गए। मैंने दिल्ली, एनसीआर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सड़कों पर दिनभर अठखेलियां करने वाले उन तमाम लोगों को देखा जो कई किलोमीटर तक अपने बैग और सूटकेसों को सिर पर रखकर गंगा की गोद में पहुंचते रहे और वहां पर बिना किसी शिकायत के वापस लौटकर महंगी जलेबी खाकर गंगा की पुण्यता का बखान करते रहे।

इसी को आधार माने तो पुराणों में कहा गया है..

अश्वमेघ सहस्त्राणि वाजपेय शतानि च।
लक्षं प्रदशिणां पृथ्वयाः कुंभ स्नानेहितफलम्॥

ऋग्वेद कुम्भ के कर्मफल को इस प्रकार बताता है, यह मुझे ब्रह्मघाट पर जर्मनी से आये पत्रकार जेनिन डोले ने बताया।

जघानं वृत्रं स्वधितिर्वनेवरू रोज पूरो अरत्र सिंघन।
विभेद गिरी नव भिन्न कुम्भ भागा, इन्द्रो अकृगतास्वयुभिः॥

इस दृष्टि से ये अनूठा महापर्व रहा है। भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का अनुरूपण करने वाले इस कुम्भ पर्व को इस मायने में भी विलक्षण कहा जा सकता है कि पूरे 120 दिनों तक विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों को धारण करके लोग, खासकर अपनी विशिष्ट वेशभूषा में साधु-संन्यासी कई बोली भाषाओं में जब वार्तालाप करते, तब पूरा देश हरिद्वार में एकत्र होकर भारत की महिमा का गान करने लगता था। इस महापर्व को आज वैश्विक स्तर पर पहचान मिल चुकी है। कुम्भ के धार्मिक और पौराणिक महत्व के अलावा पूरा विश्व इसके आध्यात्मिक प्रकाश से आलोकित होता रहा। अमेरिका और जर्मनी समेत यूरोप के कई चैनलों ने कुम्भ का सीधा प्रसारण भी दिखाया। बाहर से आए विदेशी पर्यटक और मीडिया के तमाम लोग ये देखकर अभिभूत होकर बिना किसी शिकवा शिकायत के मीलों सिर पर अपना सामान लादकर आता जा रहा है और शीतल जल में तीन डुबकी लगाकर अपने घरों को चला जा रहा है। वे ये देखकर चकित थे कि स्नान करके जाने वाले कनस्तरों, बोतलों में ये ही जल भरकर क्यों ले जा रहे हैं। इन विदेशियों की इन जिज्ञासाओं को कुम्भ मेले में अपनी आध्यात्मिक आभा से सराबोर करने वाले संत प्रवर चिदानंद जी महाराज, कैलाशानन्द जी, संत प्रवर विजय कौशलजी महाराज शान्त करते रहे। हजारों की संख्या में घाट के किनारे तापस और सिर घुटाकर तापसी दीक्षा लेने वाले युवा संन्यासी भी सबकी आंखों के केन्द्र में बने रहे।

कुम्भ पर्व का सबसे पहले आयोजन कहां हुआ था ये तो कहना कठिन है लेकिन प्राचीनतम वेद ऋग्वेद में भी कुम्भ के महात्म्य का वर्णन मिलता है। वैसे तो साधारण भाषा में कुम्भ को मेला कहा जाता है जबकि ये मेला न होकर ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिक पर्व है। मेले का सामान्य अर्थ है जहां पर अधिकतम लोग जुड़ें, भीड़भाड़ हो, मनोरंजन हो, जबकि कुम्भ का आयोजन ज्योतिष, कला, नक्षत्र, ग्रह, गणना एवं मुहुर्त द्वारा तय होता है। इसमें भाग लेने का तात्पर्य आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करना है।

इसी लक्ष्य के साथ जनवरी में जब पवित्र नगरी हरिद्वार सज-धज रही थी और हर क्षण नया रूप और रंग धारण कर रही थी तब किसी को शायद ही कल्पना रही होगी कि ये विष्णुपुरी अगले चार महीने तक संन्यासियों की पाठशाला बन जाएगी। तम्बुओं के एक नए और विशाल शहर में जब तमाम शंकराचार्यों और महामंडलेश्वरों का आगमन आरम्भ हुआ, सारी दुनिया इसे कौतूहल से निहारती रह गई। पाप से मुक्ति की कामना के साथ वसंत पंचमी स्नान, माघ स्नान समेत सभी कुम्भ पर्वों पर लोगों का जुटान एक नया अध्याय लिख गया। शाही स्नानों की शुरूआत तक तो पूरा हरिद्वार गंगामय हो चुका था। आरती, प्रवचन, योग, भाषण और गंगा की नीलधारा में दिव्य प्रेम सेवा मिशन के प्रांगण में आयोजित महाकुम्भ मंथन ने तो एक नई दिशा की नींव ही डाल दी। 01 अप्रैल से आरम्भ होकर 12 अप्रैल तक इस विचार मंथन में पूज्य शंकराचार्य वासुदेवानन्द सरस्वती, मुख्यमंत्री रमेश पोखरियाल निशंक, संत कैलाशानंद जी, संत विजय कौशल जी, स्वामी वियोगानंद सरस्वती, स्वामी चिदानंद मुनि जी, जवाहरलाल कौल, तरुण विजय, सच्चिदानन्द भारती, आचार्य बालकृष्ण जी, श्री के.एन. गोविंदाचार्य, एच दत्तात्रेय और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक मोहन राव भागवत ने सांस्कृतिक मूल्यों की जो अविरल गंगा आशीष गौतम के ऋषिकुल में बहायी उससे प्रतिदिन सैकड़ों लोग अभिभूत होते रहे।

शाही स्नान का दिन आया। गठरी-मोठरी बांधे लाखों लोग पुण्य कमाने के लिए दूर-दूर से चलकर

- जूना अखाड़ा में 1,50,000 से ज्यादा हैं नागा साधु
- 13 अखाड़ों को प्राप्त है कुम्भ और अर्धकुम्भ में शाही स्नान का अधिकार
- 07 अखाड़े हैं संन्यासियों के जिसमें जूना, आह्वान, पंचअग्नि, निरंजनी, महानिर्वाणी, आनन्द और अटल हैं।
- 03 अखाड़े बैरागियों के होते हैं-दिगम्बर, निर्मोही और निर्वाणी
- 02 अखाड़े उदासीन परम्परा के होते है जिसमें पंचायती बड़ा और पंचायती नया अखाड़ा है
- संन्यासियों के सात अखाड़ों में केवल अग्नि अखाड़े में नागा संन्यासी नहीं होते हैं
- शाही स्नान के दौरान सबसे अंत में निर्मल अखाड़ा स्नान करता है।

गंगा की अविरल धारा के मोहपाश में बंधने को बेताब थे तो दूसरी ओर अखाड़ों की शाही सवारी गंगा की गोद में समाने को व्याकुल। अजीब सा नजारा था। आश्चर्य और विराटता का संगम। शाही स्नान के पर्व में तेरह अखाड़ों ने अपनी सहभागिता की। जब नीलधारा फांट से सजे संवरे अखाड़ों का जुलूस हर की पैडी की ओर बढ़ा तो इस कारवां को कैद करने के लिए होड मच गई। आस्था का ज्वार अखाडों की चरणधूलि लेने को टूट पड़ा। शाही स्नान के लिए इन तेरह अखाड़ों में संन्यासियों के सात अखाड़े हैं जबकि बैरागियों के तीन अखाड़ों के साथ तीन अखाड़े उदासीनों के हैं। संन्यासियों के सात अखाड़ों में जूना अखाड़ा, आह्वान अखाड़ा, पंचाग्नि अखाड़ा, निर्मोही अखाड़ा और अटल अखाड़ा आते हैं। जबकि उदासीन अखाड़ों में पंचायती बड़ा उदासीन, पंचायती नया उदासीन और निर्मल अखाड़ा शामिल है। महाशिवरात्रि 12 फरवरी को जब प्रात: नौ बजे मुहुर्त पर सबसे पहले जूना अखाड़ा गंगा की गोद में समाया तो पूरा नीलधारा क्षेत्र हर हर गंगे की सुर लहरी से गुंजायमान हो उठा। सबसे आखिरी में निर्मल अखाड़े का स्नान होता है। इन अखाड़ों के वैभव ने सबकी आंखों को चौंधिया दिया था। दूसरे शाही स्नान पर्व सोमवती अमावस्या 15 मार्च और फिर अंतिम शाही स्नान 14 अप्रैल बैशाखी पर तो लोगों का हुजूम ही हर की पैड़ी पर टूट पड़ा। एक बार तो लगा कि सारी मर्यादाएं और सीमाएं आज धूल-धूसरित हो जाएंगी लेकिन गंगा की अविरल धारा ने भारत के मानस पुत्रों को खुद के भीतर समाहित कर सब कुछ शान्त कर दिया। कुम्भ के दौरान बनी रही एक आकर्षक लय ने सबको एक सूत्र में बांध दिया था और वह सूत्र अंत तक बंधा रहा। इसी के भरोसे रहा पूरा प्रशासन। कुम्भ के प्रमुख अधिकारी ने तो खुद को गंगा के हवाले कर दिया था। वे कहते थे-मैं क्या कर सकता हूं? मां गंगा सबको बुला रही है, वह ही सबकी साज-संभाल भी करेगी। हम तो यहां पर गंगा के प्रहरी मात्र हैं।

कुम्भ पर्व के दौरान तीन अणियों और अठारह अखाड़ों को अपने आप में समेटे बैरागी अखाड़े के 700 खालसों ने गंगा में स्नान करके एक इतिहास लिखा। एक खालसे में नागा साधुओं की संख्या हजारों तक होती है। अणियों का महत्व तो रामायण काल से है। त्रेता में लंका की विजय के निमित्त धर्मयुद्ध में इन अणियों की स्थापना की गयी थी। इसकी तात्कालिक कमान हनुमान, जामवंत, और अंगद सहित द्विविद के हाथ में दी गई थी। लेकिन महाभारत काल में अत्याचारी बन गए द्विविद को भगवान श्रीकृष्ण के भाई बलराम ने मार गिराया था। इसके बाद केवल तीन ही अणियां रह गई थीं। इनमें से निर्वाणी अणि, दिगम्बर अणि और निर्मोही अणि ने शाही स्नान में अनुपम छटा के साथ भाग लिया। हिन्दू जो कि अपनी जीवन शैली में वर्ण और आश्रम व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। वे कुम्भ पर्व में भी कार्य विभाजन के आधार पर चार वर्णों और आयु विभाजन के आधार पर चार आश्रमों से संचालित किए जाते रहे। हिन्दुओं की सामाजिक मान्यताओं को बल देने के लिए आदि शंकराचार्य ने चौथी अवस्था यानि संन्यास को व्यवस्थित

करने पर ध्यान दिया था। इसके लिए दशनामी परम्परा का सूत्रपात किया गया था। संन्यासियों के ये दशनाम थे गिरी, पुरी, भारती, सरस्वती, वन, अरण्य, पर्वत, सागर, तीर्थ और आश्रम। धर्म की रक्षा के लिए इनको हर तरह की दीक्षा दी गई। नागा संन्यासी इसमें सबसे प्रवीण निकले। सामरिक संगठन की रचना का आधार बनी धूनी, मढ़ी एवं दावा और अखाड़ा इकाइयां। नागा संन्यासियों ने इसी के चलते अपने वस्त्र त्याग दिए। समाज हित के लिए शस्त्रधारी होने की ठान ली। शंकराचार्य जी ने चारों दिशाओं में दशनामी परम्परा के आधार पर चार मठों की स्थापना करके इससे संन्यासियों को जोड़ दिया। वन और अरण्य नामधारी संन्यासी जगन्नाथपुरी स्थित गोवर्धन पीठ से जुड़े तो आश्रम नामधारी, द्वारिका पीठ से। उत्तर की ज्योतिष पीठ से जुड़े गिरी, पर्वत और सागर नामधारी संन्यासी और बचे तीन पुरी भारती और सरस्वती को श्रृंगेरी मठ के साथ जोड़ दिया गया।

बैसाखी के पर्व पर शाही स्नान के लिए 1 करोड़ 60 लाख लोगों ने स्नान किया। पूरे कुम्भ में 6 करोड़ से अधिक लोगों द्वारा स्नान किए जाने के अधिकृत आंकड़े आये हैं।

स्नान की इस परम्परा में 25 जनवरी को हरिद्वार में दो अखाड़ों के रमता पंचों ने प्रवेश किया। पूरी कुम्भ नगरी का महौल संतोत्सव जैसा था। धर्मध्वजाओं की स्थापना से शुरू होकर अखाड़ों के पेशवाई जुलूसों से सांस्कृतिक वातावरण बनता चला गया। नागा संन्यासियों के स्वागत में तो लोगों ने पलक-पांवड़े बिछा दिए। शाम गंगा जी की आरती में स्वर लहरियां गुनगुनाती रही। शाही स्नान से पहले गंगा के चारों ओर सात पेशवाई जुलूसों को निकाला गया। सबसे पहले जूना अखाड़ा की पेशवाई निकली थी। इसी को ध्यान में रखकर कुम्भ के दौरान भूमा निकेतन संस्था ने कुम्भ कलश की स्थापना की है। इसके लिए भारत की सभी नदियों का जल और भारत के सभी भूभागों की मिट्टी को सहेजकर रखा गया है। इस कलश को भारत की एकता और अखण्डता का संदेशवाहक बनाया गया है। इतना ही नहीं, इस बार के कुम्भ में संतों ने अपनी वाणी को पर्यावरण के प्रति मुखरित करने का काम भी किया। गंगा, यमुना, गोमती, कावेरी, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र जैसी सभी भारतीय नदियों को स्वच्छ करने का आह्वान किया गया जो इस महाकुम्भ की विशेषता के रूप में निकल कर सामने आया। संत समाज ने पहली बार सरकारों को पनबिजली परियोजनाओं और बांधों से हो रहे नदियों के अस्तित्व पर संकट को लेकर गम्भीर चेतावनी भी दी और एक दिन इसके लिए आंदोलन कर विरोध दर्ज कराया।

120 दिनों चला महाकुम्भ अब समाप्त हो गया है। पूरे कुम्भ के दौरान आस्था, विश्वास, समर्पण और श्रद्धा का ऐसा अभूतपूर्व चित्र उभरकर सामने आया जो दुनिया की किसी भी नदी के तट पर देखने को नहीं मिलता है। मानवता और विभिन्न संस्कृतियों के जनसमुद्र के इस मिलन को अगर पूरे विश्व ने अनूठा कहा तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी। तम्बुओं, बांस, की फटिट्यों, पुआल, चटाई और घासफूस से पटे इस पावन तीर्थ में प्रतिदिन कई टन देशी घी, कई कुंतल समिधा और अन्न आदि का प्रयोग हुआ। मंत्रों की मधुर ध्वनि और आरती की गूंज ने सबको मंत्रमुग्ध करके फिर से आमंत्रित कर लिया है। मठों के भीतर पूरे 120 दिनों तक चलने वाले लंगर ने हर आदमी को कुम्भ के दौरान अमृतपान करने का अवसर दिया है। सही मायने में ये एक अन्तरराष्ट्रीय पर्व था जहां पर हर जाति, मत, पंथ के लोग एक ही आसमान के तले एकत्र हुए और मोक्ष की कामना के साथ बगैर किसी सुविधा की आस लिए आए और मां गंगा की गोद में बैठकर फिर आने को विदा हो गए। उन्हें न तो कोई शिकायत थी, न ही प्रशासन से कोई आस, बस था तो केवल हर हर गंगे...।

● *लेखक अभाविप के पूर्व कार्यकर्ता हैं। पत्रकार के रूप में आपने निरंतर तीन माह तक अपने चैनल के लिए हरिद्वार रहकर कुम्भ की रिपोर्टिंग की। 'छात्रशक्ति' के अनुरोध पर उन्होंने यह विशेष लेख लिखा है।*

प्रारम्भ से ही भटकता रहा नक्सलबाड़ी आन्दोलन

1999 में बिहार के जहानाबादमिल में अलग-अलग गांवों में नक्सलवाद और उसके प्रतिकार के नाम पर अनेक नरसंहार हुए जिनमें दर्जनों लोगों को जान गंवानी पड़ी। अभाविप ने इन घटनाओं के विरोध में 'जाति तोड़ो, हिंसा छोड़ो, समतामूलक समाज जोड़ो' नारे के साथ एक शांतियात्रा आयोजित की। यात्रा के अनुभवों को संकलित कर परिषद् के तत्कालीन राष्ट्रीय सह संगठन मंत्री हरेन्द्र कुमार तथा प्रदेश सहमंत्री प्रदीप कौशिक ने 'रक्तरंजित बिहार' नामक पुस्तक लिखी। प्रस्तुत अंश इस पुस्तक का प्रथम अध्याय है। सं.

बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश के अलावा कर्नाटक, असम के भी कुछ हिस्सों में नक्सल आन्दोलन फैल चुका है। विगत तीस वर्षों में जिस तेजी से इस आन्दोलन का फैलाव हुआ है, उसी तेजी से इस आन्दोलन के 50 से ऊपर ग्रुप काम कर रहे हैं, फिर भी मुख्य रूप से सीपीआई (माले लिबरेशन), पीपुल्स वार ग्रुप, एमसीसी आदि ज्यादा चर्चित एवं शक्तिशाली ग्रुप कहलाते हैं।

आजादी के तुरन्त बाद तेलंगाना (आन्ध्र प्रदेश) में सीपीआई ने हिंसक आन्दोलन प्रारम्भ किया, पर पार्टी के अन्दर हो रहे विरोध एवं सोवियत संघ के समर्थन के अभाव में पार्टी ने हिंसक रास्ता छोड़कर संसदीय रास्ता अपनाया। 1964 में सीपीआई का तेनाली कांग्रेस में विभाजन हो गया। सीपीआई सोवियत संघ समर्थक पार्टी बन गयी तो सीपीएम चीन समर्थक पार्टी कहलाने लगा। सीपीएम ने सीपीआई पर संशोधनवादी होने का आरोप लगाया।

कामरेड चारू मजूमदार सीपीएम के कार्यकर्त्ता थे। 1965 से 1967 के बीच चारू मजूमदार ने पार्टी नेतृत्व को 8 पत्र लिखे जिसे सीपीआई (माले) का प्राथमिक दस्तावेज कहा जाता है। इस पत्र में भारत में हिंसक क्रान्ति प्रारम्भ करने, चीन को अपना आदर्श मानने, क्षेत्र सह सत्ता छीनने की वकालत की गई थी।

1967 में अनेक राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनीं क्योंकि कांग्रेस 9 राज्यों में चुनाव हार गयी थी। प. बंगाल में अजय मुखर्जी के नेतृत्व में गैर कांग्रेसी सरकार सत्तारूढ़ हुई। चारू मजूमदार और उनके साथियों को लगा कि अब सारी व्यक्तिगत भूमि सरकार लेकर गरीबों में बांट देगी।

3 मार्च 1967 को किसान सभा के बैनर तले उत्तर बंग के सिलीगुड़ी के पास चारू मजूमदार ने भूमि हड़प आन्दोलन प्रारंभ कर दिया। चारू मजूमदार क साथ सौरेन बोस, कानू सन्याल, जंगल संथाल एवं खोखन मजूमदार थे।

चूंकि संयुक्त सरकार में सीपीएम सहभागी थी और सत्ता से बाहर रहते हुए भूमिहीनों में भूमि बांटने की मांग उठती रहती थी, अत: चारू को विश्वास था कि सरकार उनके भूमि हड़प आन्दोलन का समर्थन करेगी। पर यह संवैधानिक सरकार के लिए सम्भव नहीं था कि वह लोगों को कानून अपने हाथों में लेने की छूट दे।

23 मई 1967 को इंस्पैक्टर वॉगड़ी पुलिस बल के साथ चारू और उनके समर्थकों को गिरफ्तार करने नक्सलवाड़ी पहुंचे। चारू के साथियों एवं समर्थकों ने पुलिस बल पर आक्रमण कर इंस्पैक्टर वॉगड़ी को जान से मार डाला। प. बंगाल सरकार को बाध्य होकर कड़े कदम उठाने पड़े। 25 मई 1967 को पुलिस एवं ग्रामीणों में मुठभेड़ हुई जिसमें सात महिलाएं एवं 2 बच्चों सहित दस लोग मारे गए। इन्हीं शहीदों के नाम इस सशस्त्र आन्दोलन का नाम 'नक्सल आन्दोलन' पड़ गया।

1962 के चीनी आक्रमण के बाद भारत में चीन के प्रति एवं उसके नेता माओ के प्रति आक्रोश था। चीन मौके की ताक में था अत: उसने नक्सलबाड़ी आन्दोलन का न केवल नैतिक समर्थन किया बल्कि 28 जून 1967 के पेंकिंग रेडियो से उसने इसे मजदूर क्रांति की संज्ञा दे डाली।

चारू भी चीन के प्रति अपनी सहानुभूति को छुपाना नहीं चाहते थे। 'माओ हमारे चेयरमैन' का नारा खुलेआम दे डाले। 'सत्ता बंदूक की नोंक से निकलती है' और 'माओ हमारे चेयरमैन' यह नारा नक्सली 1980 तक

खुलेआम लगाते थे। 1980 के बाद अचानक यह नारा दिवालों से गायब हो गया क्योंकि पार्टी में यह महसूस किया गया कि 'दुनिया के मजदूरों एक हो' के नाम पर राष्ट्रवाद को कुचला नहीं जा सकता और राष्ट्रवाद का यह तकाजा था कि हर राष्ट्रभक्त चीन को एक आक्रमणकारी देश करार दे।

चारू अपनी सशस्त्र क्रान्ति को मात्र छापामार युद्ध तक ही सिमटकर रखने के पक्षधर नहीं थे वे इसे जनक्रान्ति बनाना चाहते थे। अत: एक नई पार्टी बनाने तथा उसका विस्तार समाज के सभी लोगों के बीच करना चाहते थे। परिणामस्वरूप उन्होंने चीन की सशस्त्र जनक्रान्ति का रास्ता चुना।

1970 में चारू ने एक प्रतिनिधि मण्डल चीन भेजा, जिसने वापस आकर चीनी नेताओं से हुई अपनी वार्ता से चारू को अवगत कराया। चीन में उनकी मुलाकात माओ, चाऊ इन लाई एवं कंग सेंग से हुई। मई 1970 में चारू ने अपनी नयी पार्टी बना ली। पार्टी का नाम सीपीआई (माले) रखा। चारू को यह विश्वास था कि सशस्त्र क्रान्ति की पृष्ठभूमि भारत में विद्यमान है और वे सशस्त्र क्रांति से सत्ता प्राप्त कर लेंगे।

प. बंगाल की सरकार की सहानुभूति प्रारम्भ में नक्सल आन्दोलन के साथ थी। पर जब यह कानून एवं व्यवस्था की समस्या पैदा करने लगा तो उसने इस आन्दोलन को सीआईए का षड्यंत्र कहा। जिस सीपीएम ने आंध्र सरकार की आलोचना की थी कि वह नक्सलियों पर दमनचक्र चला रही है, उसी ने प. बंग में पुलिस कार्रवाई का समर्थन किया। ज्योति बसु उस सरकार में गृहमंत्री थे और नक्सलियों पर पुलिस शिकंजा कसा जा रहा था।

16 जुलाई 1972 को चारू मजूमदार कलकत्ता में गिरफ्तार कर लिये गये और संदेहास्पद अवस्था में 28 जुलाई 72 को उनका निधन हो गया।

नक्सल आंदोलन वामपंथ के गर्भ से पैदा हुआ पर उसको कुचलने का काम प. बंग में सबसे पहले वामपंथ ने ही किया। क्या चारू का सपना-सशस्त्र क्रान्ति जनक्रान्ति बनेगी, खेतों पर काम करने वालों का अधिकार जमीन पर होगा, पूरा हुआ?

बंगलादेश मुक्ति आंदोलन का चारू ने विरोध किया फलत: पार्टी में राजनैतिक बहस छिड़ गयी।

किसकी हत्या करनी है? ट्रेड यूनियन के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या होगा? मध्य वर्गीय मजदूरों को क्रान्ति में शामिल करना है या नहीं? छात्र, युवा संगठन चाहिए या नहीं? ऐसे मुद्दे थे जिस पर पार्टी के अन्दर मतभेद थे।

'हिंसक आन्दोलन नेतृत्व की आलोचना स्वीकार करने को तैयार नहीं होता, पार्टी के आंतरिक लोकतंत्र को वह अराजकतावाद की संज्ञा देता है, अत: उसमें विभाजन होना उसकी प्रकृति है।' अफगानिस्तान इसका सबसे ताजा उदाहरण है। नक्सल आन्दोलन के भाग्य में भी यही लिखा था। फलत: 1972 आते-आते उसकी पहली पंक्ति के नेता टूट-टूटकर अलग होने लगे। सुशीतल राय चौधरी, असीम चटर्जी, का सत्यनारायण सिंह धीरे-धीरे न केवल अलग हो गये बल्कि उन्होंने चारू मजूमदार से अपने मतभेदों को सार्वजनिक रूप से प्रकट भी किया।

यानि नक्सल आन्दोलन विस्तार के साथ ही साथ भटकाव की त्रासदी झेलने लगा।

कामरेड चारू मजूमदार के बाद पार्टी का नेतृत्व कामरेड जौहर ने संभाला और कामरेड जौहर के बाद कामरेड विनोद मिश्रा ने पार्टी को अंततोगत्वा एक राजनैतिक दल के रूप में परिवर्तित कर दिया क्योंकि भूमिगत संघर्ष एवं संसदीय संघर्ष में वे समन्वय स्थापित नहीं कर पाये।

1980 में पहली बार चुनावी राजनीति में प्रवेश करने के लिए उन्होंने आईपीएफ नामक चोला पहन रखा था पर बाद में उस चोंगे को फेंककर मूल पार्टी सीपीआई (माले) के नाम से ही उन्होंने गतिविधि प्रारंभ की।

शुरू में पार्टी को सफलता नहीं मिली, पर उसने सीपीआई के आधार को काफी कमजोर कर दिया। 1989 में पहली बार सीपीआई (माले) को संसद में प्रवेश मिला। आरा संसदीय क्षेत्र से श्री रामेश्वर प्रसाद सांसद चुने गए। पर 1991 के चुनाव में पराजित हो गए।

1990 में बिहार विधानसभा में सीपीआई (माले) के सात प्रतिनिधि चुनकर आये पर आरक्षण एवं लालू लहर में वे जातिगत आधार पर बिखर गए। भूमिगत आन्दोलन की सफलता और संसदीय राजनीति की असफलता के बाद भी नक्सल आन्दोलन (माले) अपने को संभाल नहीं सका और संसदीय लोकतंत्र में फंसता चला गया।

■

दस्तावेज

शिक्षा प्रसार योजना

बन्धुओं!

भारत ने सदैव सारे संसार को अपने ज्ञान-प्रकाश से आलोकित किया है। राष्ट्र निर्माण के लिए शिक्षा का महत्व हमारे पूर्वजों ने भली भांति समझा और इसी कारण सारे जगत् को शिक्षा का दान देकर उन्होंने भारत को जगद्गुरु के पद पर आसीन कराया।

प्राचीन काल की शिक्षा-व्यवस्था और उसके साधनों की प्रशंसा विदेश से आए हुए भ्रमणकारियों ने मुक्त कंठ से की है। उस समय कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति निकलता जिसे अक्षर-ज्ञान न हो। ग्राम-ग्राम में विस्तृत रूप से स्थापित की हुई पाठशालाओं से लेकर नालन्दा एवं तक्षशिला जैसे महाविद्यालय जिनमें भारत के ही नहीं वरन् संसार के सभी शिक्षार्थी आते थे, हमारी अति सुन्दर शिक्षा-व्यवस्था एवं हमारे वृहद् ज्ञान के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन्हीं शिक्षा-केन्द्रों में ली हुई शिक्षा के आधार पर गम्भीर मनन एवं अध्ययन के पश्चात् निकलने वाले विद्यार्थी वर्ग ने सदैव समाज के स्तर को ऊंचा उठाकर राष्ट्र को सबल एवं सुदृढ़ बनाने का सफल प्रयास किया।

अभाग्यवश परकीयों का आगमन यहां हुआ और उनके पदार्पण करते ही हमारी शिक्षा-प्रणाली का ह्रास होने लगा। अंग्रेजी शासन-काल में हमें विशेष रूप से अशिक्षित एवं अन्धकार में रखने का प्रयत्न किया गया। इस भय के कारण कि शिक्षित समाज शीघ्र ही उठकर अपने कन्धों पर लदे हुए जुए को एक ओर फेंक देगा, विदेशी शासकों ने शिक्षा की ओर से हमें सदैव उदासीन रखा और इस कारण हम बहुत दिनों तक इस विदेशी सत्ता को भी भगवान का वरदान मानकर आत्मविस्मृत रहे।

आज हम स्वतंत्र देश के नागरिक हैं, पर अति दुःख का विषय है कि इस मुक्त वातावरण में अपने सतत प्रयत्नों द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित कर उसे नवराष्ट्र निर्माण में अधिक से अधिक उपयोगी सिद्ध कर सकें-यह बात हम भूले हुए हैं। देश में भिन्न-भिन्न प्रकार की सार्वजनिक संस्थायें अन्य राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं में व्यस्त रहने के कारण इस ओर से उदासीन हैं।

अतएव इन अति महत्वपूर्ण एवं रचनात्मक कार्यों को लेकर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् कानपुर ने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अपना कुछ समय निकालते हुए ग्राम ग्राम में जाकर अशिक्षित ग्रामीण बन्धुओं को अक्षर-ज्ञान कराये। ■

'यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई कि कानपुर के विद्यार्थियों में इस बात का उत्साह है कि छुट्टियों के दिनों वह गांवों में किताबें और गांवों के लोगों में अक्षर-ज्ञान देने का काम करें। यह काम बहुत अच्छा है और मैं इसके लिए जो प्रोत्साहन दिया जा सकता है, देना उचित समझता हूं। पर इतना ही काफी नहीं है, गांवों में त्यागी कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो स्थायी रूप से रहकर उनकी सेवा करें। यही आशा है कि इस आरम्भ का नतीजा यह होगा कि ऐसे काम करने वाले निकलेंगे।'

देशरत्न बिहार गांधी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

अध्यक्ष, संविधान सभा, दिल्ली 7.4.49

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की कानपुर इकाई ने अपनी स्थापना के तुरंत पश्चात साक्षरता का अभियान हाथ में लिया था। इस अभियान की सर्वदूर प्रशंसा हुई। संविधान सभा के अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद ने परिषद् की इस पहल की प्रशंसा करते हुए अपना शुभकामना संदेश भेजा जिसका मूल पाठ बाक्स में दिया गया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बाद में भारत के राष्ट्रपति बने।

सावरकर जयन्ती 28 मई पर विशेष

सामाजिक समरसता के अग्रदूत : सावरकर

■ आशुतोष

स्वधर्म की रक्षा और स्वराज्य की स्थापना के लिए अपना जीवन देने वाले तीन लाख से अधिक बलिदानियों की गाथा गाता 1857 के स्वातंत्र्य समर का पर्व हर भारतीय के हृदय में देशभक्ति का ज्वार जगाकर जाता है।

स्वातंत्र्य समर के 153 वर्ष बाद भी क्या कारण है कि 1857 को पूरी शिद्दत के साथ याद किया गया? क्यों यह इतिहास का एक ऐसा बिन्दु बन गया है जहां हर भारतीय अपने आपको जुड़ा पाता है? क्यों घोर साम्प्रदायिक से लेकर कथित धर्मनिरपेक्ष तक हर कोई यहां नतमस्तक होता है? भगवा ध्वज थामे राष्ट्रवादी जिस बलिदान गाथा का स्मरण दिला कर नयी पीढ़ी में देशभक्ति का भाव भरते हैं, क्यों राष्ट्रवाद की अवधारणा को ही नकारने वाले लाल झंडा फहराते वामपंथियों के झुण्ड को भी उसी 1857 के चौराहे से न केवल गुजरना पड़ता है बल्कि रूककर फूल भी चढ़ाने पड़ते हैं? जिस देश के लोग अपनी बड़ी से बड़ी विजय को भी याद नहीं रख सके वे क्यों असफलता के इस अध्याय को भुला नहीं पाते हैं?

उत्तर देती है 1907 की वह घटना जिसमें 1857 के स्वातंत्र्य समर को सिपाही विद्रोह कह कर उसे क्रूरतापूर्वक कुचल देने के 50 वर्ष पूरे होने का समारोह लंदन में मनाया गया था। लंदन के ही इंडिया हाउस में भी इस स्मृति दिवस की कुछ अलग प्रकार की ही तैयारी चल रही थी।

इंडिया हाउस में इस दिन स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों की स्मृति में एक बड़े समारोह का आयोजन किया गया। हुतात्माओं को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई और शहीदों की जय के नारे लगाये गये। भारतीय विद्यार्थी लंदन के बाजारों में क्रान्ति के बैज लगा कर घूमे। इसके पीछे थी सावरकर जैसे क्रान्तिधर्मी के नेतृत्व में लंदन में रह रहे भारतीय युवकों की स्वतंत्रता के लिए ललक।

23 वर्ष के नौजवान विनायक दामोदर सावरकर के मन में इस घटना ने आक्रोश का जो दावानल उत्पन्न किया वह आगामी 90 वर्षों तक देश के हजारों-लाखों युवकों के हृदयों में सुलगता रहा। सावरकर ने डेढ़ हजार से ज्यादा पुस्तकों और मूल दस्तावेजों का गहन अध्ययन कर उस आग को शब्दों में बांधा और '1857 का स्वातंत्र्य समर' नामक ग्रन्थ उदभासित हुआ।

भारतीय स्वातंत्र्य समर के अनन्य पुरोधा विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 के स्वातंत्र्य समर को अपनी धारदार लेखनी और प्रवाहमयी भाषा के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया कि क्रान्तिकारियों की आने वाली पीढ़ी के लिए यह ग्रन्थ गीता सदृश बन गया। जिस स्वातंत्र्य समर को अंग्रेजों ने अत्यन्त कुटिलता से सिपाही विद्रोह कह कर ब्रिटेन के अभिलेखागार में दफना दिया था उसे सावरकर ने मुक्त कराकर जब भारतीय सैनिकों तथा जनसामान्य के बलिदान की गाथा और अंग्रेजों द्वारा किये गये क्रूरतापूर्ण नरमेध के तथ्यों से राष्ट्रीय समाज का साक्षात्कार कराया तो ऐसा कौन देशभक्त था जो क्रोध से हुंकार न उठा। प्रकाशित होने से पहले ही प्रतिबंध लगाकर भी अंग्रेज इस ग्रन्थ को रोक न सके।

1857 का स्वातंत्र्य समर निस्संदेह भारतीय स्वातंत्र्य के इतिहास में मील का पत्थर है। लेकिन यह तथ्य

विस्मरण नहीं होना चाहिए कि 1907 में सावरकर द्वारा 1857 का स्वातंत्र्य समर लिखे जाने तक इसकी स्मृति टुकड़ों-टुकड़ों में केवल लोककथाओं-लोकगीतों में ही बची थी। उसका समग्र चित्र तो समाज क्या उसके नेताओं के पास भी न था। इस स्थिति में सावरकर का प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु किसी चमत्कार से कम न था। आगामी 28 मई को इस कालजयी रचना के रचनाकार सावरकर की 128वीं जयन्ती है। ब्रिटिश सरकार की फाइलों के अंधेरे में दम तोड़ रही बलिदान गाथाओं को दिन के उजाले की तरह प्रकाशित करने वाले सावरकर भी उतनी ही श्रद्धा के पात्र हैं यह याद रखना है।

सावरकर भारत में साम्राज्यवादी सत्ता के प्रखर आलोचक के रूप में उभरे थे। स्वाभाविक था विदेशी सत्ता अपने विरोध को कुचलने के लिए किसी भी सीमा तक जाती। वह गयी भी। सावरकर को उसने दो जन्मों का कारावास देकर अंदमान भेज दिया जहां उन्हें तेल निकालने के लिए कोल्हू में बैल के स्थान पर जोता जाता था। राष्ट्रभक्ति से आप्लावित सावरकर ने यह सब कुछ सहर्ष स्वीकार किया।

स्वतंत्रता की साधना में अपने आपको तिल-तिल गलाने वाले सावरकर अकेले नहीं थे। उनके जैसे हजारों लोगों ने बलिदान दिये तब जाकर स्वतंत्रता प्राप्त हुई। लेकिन इस स्वतंत्रत भारत में भी सावरकर के लिए सम्मानपूर्ण स्थान नहीं था। साल बीतते न बीतते उन्हें गांधी हत्याकांड में आरोपित कर दिया गया। उन जैसे व्यक्तित्व पर लगाया गया यह कलंक सरकार अदालत में सिद्ध तक नहीं कर सकी और वे अभियोग से बरी हुए।

इस अवसर पर दिल्ली में उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किये जाने की योजना थी किन्तु उन्हें जेल से सीधे मुम्बई ले जाया गया। यहां भी उनका अभिनन्दन नहीं होने दिया गया। 1950 में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली के भारत आने से पूर्व उन्हें शान्तिभंग की आशंका जाहिर करते हुए एक बार फिर गिरफ्तार किया गया और थोड़े समय बाद इस शर्त के साथ उन्हें छोड़ा गया कि वे राजनीति में भाग नहीं लेंगे। हालांकि उन्होंने स्वतंत्रता के बाद कभी भी प्रत्यक्ष राजनीति में भाग लिया ही नहीं था।

प्रश्न यह है कि आखिर सावरकर के साथ बार-बार यह क्यों होता रहा। गम्भीरता से विचार करेंगे तो पायेंगे कि 15 अगस्त 1947 से आज स्वतंत्रता के साठ वर्षों के दौरान सावरकर और उन जैसे अनेकों लोगों के साथ यही होता रहा है। गांधी के वारिस बनकर देश की सत्ता संभालने वालों ने किसी भी मतभेद का आदर नहीं किया। वे उसे कुचल ही देना चाहते थे।

सावरकर का अपराध यही था कि वे उस चौखटे में समा जाने को तैयार नहीं थे जिसमें तत्कालीन नेतृत्व उन्हें बिठाना चाहता था। परिणामत: स्वतंत्रता के पश्चात् देश से वह जो सम्मान पाने के अधिकारी थे उससे उन्हें वंचित रखा गया। बार-बार लांछित करने के दुष्प्रयास हुए।

सावरकर एक उच्चकोटि के लेखक थे। साहित्य की प्राय: प्रत्येक विधा में उन्होंने लिखा है। इसमें उपन्यास, कविताएं, निबंध, कथा साहित्य, इतिहास, नाटक, जीवनी आदि सभी शामिल हैं। मराठी में लिखी गयी उनकी अधिकांश रचनाओं का दर्जनों भारतीय और विदेशी भाषाओं में रूपान्तरण हुआ है। हिन्दी में दिल्ली के प्रभात प्रकाशन ने उनकी रचनाओं का समग्र छापा है जो दस खण्डों में पांच हजार से अधिक पृष्ठों में जाकर पूरा हुआ। सावरकर की रचनाओं ने न केवल क्रान्तिकारियों की अनेक पीढ़ियों को संघर्ष के लिए सन्नद्ध किया अपितु आज भी पाठक उससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। साहित्य की कसौटी पर उनकी रचनाएं उत्कृष्ट हैं। लेकिन साहित्यिक संस्थाओं पर कुंडली मारकर बैठे कथित बुद्धिजीवियों की पुरस्कार सूची में उनकी कोई रचना स्थान नहीं बना सकी।

सावरकर ने स्वतंत्रता आन्दोलन में सहभागी होकर स्वयं कष्ट सहे। उनके भाई ने भी अंदमान में कालापानी की सजा भुगती। पूरे परिवार ने देशप्रेम की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। अपनी भाभी को काव्य रूप में लिखे अपने पत्र में उन्होंने जितने मर्मस्पर्शी ढंग से अपने भाव व्यक्त किये हैं उनका कोई सानी नहीं। बलिदानी देशभक्तों की एक पूरी श्रृंखला

सावरकर ने तैयार की। मदनलाल धींगरा जैसे युवकों को उन्होंने शहादत के लिए तैयार किया।

तत्कालीन समाज को रूढ़ियों से मुक्त कराने के लिए सावरकर ने अथक परिश्रम किया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जन दबाव में मुक्त तो किया लेकिन तटीय महाराष्ट्र के पिछड़े जिले रत्नागिरी की सीमा से बाहर जाने और किसी भी प्रकार की राजनैतिक गतिविधि पर प्रतिबंध लगा दिया। तेरह वर्ष से अधिक की यह अवधि उनके जीवन का ऐसा अध्याय है जो उन्हें सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में किसी भी अन्य महापुरुष से आगे खड़ा करता है।

इस कालखण्ड में सावरकर ने जात्युच्छेदक निबंध, विज्ञाननिष्ठ निबंध, क्ष-किरणें और उशाप नाटक की रचना की जिनमें अस्पृश्यता पर तीखे प्रहार किए गए। एनएस बापट ने अपनी पुस्तक स्मृतिपुष्पे में लिखा है कि सावरकर अस्पृश्यता का वर्णन करने वाली एक कविता की रचना करते हुए रो पड़े। यह वही सावरकर थे जो अपने लिए दो जन्म के कारावास का दण्ड सुनकर जरा भी विचलित नहीं हुए थे।

हिन्दू समाज से अपील करते हुए उन्होंने कहा कि बिना यह सोचे कि अन्य लोग ऐसा करते हैं अथवा नहीं, इसी क्षण संकल्प लो कि सबके सामने तुम अपने अस्पृश्य भाई का हाथ पकड़ोगे। जो अपने घर किराये पर देते हैं वे अस्पृश्य बंधुओं को अपने घर दें, अपने कुओं से उन्हें जल लेने दें, ऐसा कोई दिन न जाये जिस दिन अस्पृश्यता निवारण का कोई सार्वजनिक प्रयास न करें।

1920 में अंदमान से लिखे एक पत्र में सावरकर ने लिखा जैसे मैं भारत पर विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर रहा हूं, उतनी ही तीव्रता से जाति आधारित भेदभाव और अस्पृश्यता के विरुद्ध भी संघर्ष का पक्षधर हूं। यह वह समय था जब महात्मा गांधी ने भारत के राजनैतिक जीवन में प्रवेश ही किया था। डॉ. अम्बेडकर ने भी महाड़ सत्याग्रह इसके काफी बाद किया। हां, स्वामी विवेकानन्द अवश्य इससे पहले अस्पृश्यता निवारण की बात कह चुके थे।

सावरकर ने यह सब केवल कहा ही नहीं अपितु स्वयं करके दिखाया। वे गणेशोत्सव समारोहों में केवल इस शर्त पर ही जाते थे कि उनमें अस्पृश्य बन्धुओं को भी प्रवेश मिलेगा। दशहरा और मकरसंक्रान्ति के अवसर पर अपने साथ सभी समाज के लोगों को लेकर सबके घरों में जाते। उनकी पत्नी यमुनाबाई हल्दी-कुमकुम के अवसर पर बड़ी संख्या में महिलाओं को एकत्र करतीं। सावरकर यह सुनिश्चित करते कि दलित समाज की महिलाएं उच्च वर्ग की महिलाओं के कुमकुम लगायें।

1930 में विठ्ठल मंदिर के संचालकों ने गणेशोत्सव के समय अस्पृश्य बन्धुओं को बैंड बजाने की अनुमति नहीं दी तो सावरकर ने स्वयं बैंक से ऋण लेकर अस्पृश्य समाज के बांधवों का एक बैंड ही तैयार किया। उन्होंने 1 मई 1933 को एक जलपान गृह प्रारम्भ किया जिसमें अस्पृश्य समाज के युवकों को रोजगार दिया। जो भी व्यक्ति सावरकर से मिलने के लिए आता था उसे पहले उस जलपान गृह में कुछ न कुछ अवश्य खाना अथवा पीना पड़ता था।

सावरकर कोई कुर्सी तोड़ क्रांतिकारी नहीं थे। अपने विचार उन्होंने अपने जीवन में उतारे थे और उनके पालन के लिए जीवन भर संघर्ष किया था। राजनैतिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में उनकी सोच और व्यवहार क्रांतिकारी था। ऐसे क्रांतिधर्मी सावरकर का चित्र जब स्वतंत्र भारत की संसद में लगाने की बात उठी तो अपने आप को स्वतंत्रता आन्दोलन का वारिस मानने वाली कांग्रेस से लेकर वामपंथी दलों तक सभी ने बहिष्कार किया। वामपंथी भूल गये कि स्वतंत्रता आन्दोलन में अपने योगदान के नाम पर वे जिस भगत सिंह का नाम लेते हैं उसे प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा देने वाली मेजिनी की जीवनी और 1857 का स्वातंत्र्य समर जिसका तीसरा संस्करण भगत सिंह ने स्वयं प्रकाशित कराया, दोनों सावरकर ने लिखे थे।

कथित धर्मनिरपेक्षता के संकुचित राजनैतिक ढ़ांचे में न समा सकने के कारण सावरकर को वह सम्मान नहीं मिल सका जिसके वे अधिकारी थे। उनके अवदान को नकारा गया। स्वतंत्र भारत में भी उन्हें बंदी जीवन व्यतीत करना पड़ा। इसके बावजूद भारत मां के चरणों में अपनी मौन साधना समर्पित कर 1966 में उनका

भौतिक जीवन पूरा हुआ। 28 मई 2008 को उनकी 128वीं जयन्ती के अवसर पर अपने श्रद्धापुष्प निवेदित करें, यह हम सबका कर्तव्य है।

उनके जीवन से जानने के लिए, सीखने के लिए बहुत कुछ है। प्रभात प्रकाशन ने सावरकर समग्र प्रकाशित कर हिन्दी जगत में बड़ा काम किया है। इसी प्रकार पुणे के कुछ शोधार्थियों ने सावरकर से सम्बंधित सामग्री बड़ी मात्रा में जुटा कर सावरकर डॉट कॉम वेबसाइट पर डाली है जो सावरकर के विषय में अधिकृत जानकारी उपलब्ध कराती है। मुम्बई के सावरकर प्रतिष्ठान का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है।

यह स्मरण रखने योग्य है कि यदि सावरकर ने प्रयास न किया होता तो 1857 का स्वातंत्र्य समर इतिहास के धुंधलकों में खो गया होता। इसी कारण सावरकर को भी विस्मृति के गर्त में डालने के प्रयास निरंतर जारी हैं। इन परिस्थितियों में जिन्होंने सावरकर के व्यक्तित्व और कृतित्व को समाज के सम्मुख लाने का साहस किया है, उनके प्रयास भी महत्वपूर्ण हैं, स्वागत योग्य है। ■

यूआईडी चेयरमैन से मिला अभाविप प्रतिनिधिमंडल

अभाविप शुरू से भारत में अवैध आव्रजन के विरोध में आन्दोलनरत रही है भारत सरकार द्वारा दिया जा रहा यू.आई.डी. कार्ड, घुसपैठियों के लिए लाइसेंस न बन जाये। इस विषय को लेकर अभाविप का प्रतिनिधिमण्डल यू. आई.डी. के चेयरमैन श्री नंदन निलेकणी से मिला। प्रतिनिधि मण्डल में राष्ट्रीय उपाध्यक्ष रविरंजन, क्षेत्रीय संगठन मंत्री सुनील बंसल, राष्ट्रीय मंत्री श्रीरंग कुलकर्णी, प्रान्त मंत्री आशुतोष श्रीवास्तव थे। अभाविप के प्रतिनिधिमण्डल ने निलेकनी के सम्मुख अपना मत प्रस्तुत किया। श्री निलेकनी ने सैद्धान्ति रूप से हमारे विषयों से सहमती प्रकट की। उन्होंने प्रतिनिधिमण्डल को सलाह दी की यह सारे मुद्दे सैद्धान्तिक रूप से सरकार के सम्मुख उठाए जाये। हम केवल इस योजना को क्रियान्वित कर रहे हैं।

नंदन निलेकनी से भेंट करते क्षेत्र संगठन मंत्री सुनील बंसल एवं राष्ट्रीय मंत्री श्रीरंग कुलकर्णी

1. प्रत्येक व्यक्ति को यू.आई.डी. की और से कोई कार्ड नहीं केवल एक नम्बर दिया जाएगा।

2. यह नम्बर भारत के हर नागरिक को ही नहीं, हर रहने वाले व्यक्ति को मिलेगा। यह नम्बर किसी नागरिका को प्रमाणित नहीं करेगा।

3. यह निर्णय सरकार की केबीनेट द्वारा लिया गया एवं सारी राज्य सरकारों व मुख्यमंत्रियों से चर्चा के बाद लिया गया है। नीलेकनी ने बताया की हमारे बजट के आवंटन के लिए पी.पी.टी. का प्रस्तुतिकरण संसद ने संसद सदस्यों के सम्मुख किया।

4. यह योजना किसी भी व्यक्ति के लिए बाध्यकारी नहीं है। परन्तु भविष्य में यह विभिन्न विभागों और राज्य सरकारों द्वारा समाज कल्याण योजनाओं एवं सेवाओं के लिए बाध्य किया जा सकता है।

5. इस पूरी योजना में 20-25 हजार करोड़ रुपए के खर्च का अनुमान है।

उन्होंने हमारी चिन्ता व दृष्टिकोण से सहमती जताते हुए हमारी बात सम्बद्ध अधिकारियों तक पहुंचाने की बात कही। उन्होंने उनकी सीमाएं बतायी। सरकार के अनुसार कोई भी निर्णय एवं मांग केवल सरकार के स्तर पर ही तय होगी। ■

अंग्रेजियत की विषवेल का उन्मूलन एक समसामयिक आवश्यकता

-अतुल कोठारी

दिनांक 2 अप्रैल 2010 को भोपाल स्थित भारतीय वन प्रबन्धन संस्थान के दीक्षांत समारोह में केन्द्र सरकार के वन एवं पर्यावरण मंत्री श्री जयराम रमेश ने 'गाउन एवं टोपी' को उतार कर कहा कि यह ब्रिटिश बर्बरता की निशानी है। उन्होंने आगे कहा कि मुझे आश्चर्य हो रहा है कि स्वतंत्रता के 60 वर्षों के बाद ब्रिटिश बर्बरता की निशानी को हम क्यों ओढ़ रहे हैं। इस घटना पर देशभर में एक नई बहस प्रारम्भ हुई है। श्री जयराम रमेश की इस प्रतिक्रिया एवं निवेदन पर कई शिक्षाविदों ने सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। कुछ शिक्षाविदों को उनका यह कार्य नागवार गुजरा।

दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. दीपक पेंटल ने कहा कि आजादी के बाद अंग्रेजों के तौर-तरीकों पर ही देश में कई काम हो रहे हैं। मेरा मानना है कि हम किसी बुरी चीज का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। इस तरह तो हमें अंग्रेजी शिक्षा व पी.एच.डी. तक को बन्द कर देना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि कॉर्पोरेट जगत में टाई-कोट-पेंट भी भारतीय नहीं है। गुरु गोविन्द सिंह विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. डी.के. बन्दोपाध्याय का मानना है कि यह बहस का मुद्दा नहीं है। यदि परम्परा अच्छी है तो कायम रखने में बुराई क्या है? इसका निर्णय विश्वविद्यालय को करना है। कोलकाता स्थित रवीन्द्र भारतीय विश्वविद्यालय में सामान्य पोशाक में ही दीक्षांत समारोह होता है।

डूटा के अध्यक्ष, जामिया शिक्षक संघ के सचिव जैसे कुछ लोगों ने भी गाऊन को बरकरार रखने की वकालत की। जामिया हमदर्द विश्वविद्यालय के डीन प्रो. अफताब आलम ने गाऊन को कायम रखने की वकालत करते हुए कहा कि इसका उपयोग उमेरिका में भी हो रहा है। उन्होंने आगे कहा कि भारतीय कानून भी अंग्रेजी पद्धति पर आधारित है उसका क्या होगा? इसी प्रकार जे.एन.यू. के कुलपति बी.बी. भट्टाचार्य ने कहा कि समारोह में रंगीन गाऊन की प्रथा अतीत की विरासत है। जयराम रमेश ने कहा चर्चा से जुड़े विश्वविद्यालय को चर्च जैसी सभ्यता बनाये रखनी होती है। इस प्रकार की टिप्पणी करना बहुत ज्यादा है। अगर इसे भारत में बर्बरता माना जायेगा तो इसे आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, यूरोपीय तथा अमेरिकन विश्वविद्यालयों में भी असभ्य माना जाना चाहिए। एक अन्य सज्जन ने तो यहां तक कह दिया कि जयराम रमेश कुर्त्ता-पायजामा उतार देंगे क्या? जो कि मुगल काल की गुलामी का प्रतीक है।

विद्वानों की उपरोक्त टिप्पणियों से कुछ बातें समान रूप से उभरकर आती है। कुछ विद्वानों ने कहा कि परम्परा अच्छी है तो उसको जारी रखना चाहिए, लेकिन इस गाऊन और टोपी में क्या अच्छाईयां है वह किसी ने नहीं कहा। क्या वह अंग्रेजों की देन है इसलिए अच्छी परम्परा है, यह प्रश्न उठता है। जे.एन.यू. के कुलपति ने कहा कि यह अतीत की विरासत है। देश के प्रमुख विश्वविद्यालय के कुलपति के कुलपति जब यह निवेदन देते हैं तब अनुभव होता है कि वास्तव में मैकाले सफल है। क्योंकि पिछले मात्र 150 वर्ष के चलन को हमारे विद्वान कुलपति अतीत की परम्परा कह रहे हैं। हमारा अतीत इतना छोटा है क्या? आज पूरा विश्व स्वीकार करता है कि 'ऋग्वेद' विश्व का सबसे पुराना ग्रन्थ है। कुछ वर्ष पूर्व गुजरात के खम्भात में अवशेष प्राप्त हुए वह 9000 वर्ष पुराने हैं। इसको पूरे विश्व ने स्वीकार किया। यह तो वर्तमान में जिसको अन्तरराष्ट्रीय प्रमाण माना जाता है उसका उदाहरण है। बाकी तो रामसेतु के फोटो नासा ने ही

अपने वेबसाइट पर उपलब्ध करोय है। इसी प्रकार प्रो. अफताब तथा जे.एन.यू. के कुलपति ने कहा कि यह परम्परा अमेरिका तथा यूरोप के कई विश्वविद्यालयों में चल रही है। अगर हमारे यहां इसे बर्बर माना जायेगा तब वहां भी इसको असभ्य माना जाना चाहिए। इस कथन पर इन विद्वानों की विद्वता पर तरस आता है। क्या जिस परम्परा को अमेरिका या यूरोप में मान्यता है उसको हमें भी मान्यता देनी चाहिए? विद्वानों की इस प्रकार की सोच में पश्चिम का अन्धानुकरण स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। दूसरी बात अमेरिका एवं यूरोप ने क्रिश्चियन पंथ का स्वीकार किया है इसलिए वहां चर्च की परम्परा चले यह स्वभाविक है लेकिन भारत ने तो सर्वपंथ समादर का स्वीकार किया है। जिस सज्जन ने कुर्ता-पायजामा को मुगलों का वेश बताया शायद उस सज्जन का इतिहास का अध्ययन अधूरा है। दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति ने कहा कि कॉर्पोरेट जगत का वेश कोट-पेंट-टाई विदेश से आया है। अगर सर्दी के दिनों में कोई भी व्यक्ति कोट-पेंट पहनता है तो ठीक है लेकिन 45डिग्री सेल्सियस गर्मी में भी कोट-पेंट-टाई पहनना अनिवार्य है तब तो इसे मूर्खता ही माना जायेगा। जिस वेश में विवशता, नग्नता, फूहड़ता दिखाई देता हो या यहां के प्रकृति के लिए प्रतिकूल हो या अवैज्ञानिक हो उसको कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

जे.एन.यू. के कुलपति ने कहा कि यह अतीत की विरासत है। देश के प्रमुख विश्वविद्यालय के कुलपति के कुलपति जब यह निवेदन देते हैं तब अनुभव होता है कि वास्तव में मैकाले सफल है। क्योंकि पिछले मात्र 150 वर्ष के चलन को हमारे विद्वान कुलपति अतीत की परम्परा कह रहे हैं। हमारा अतीत इतना छोटा है क्या? आज पूरा विश्व स्वीकार करता है कि 'ऋग्वेद' विश्व का सबसे पुराना ग्रन्थ है। कुछ वर्ष पूर्व गुजरात के खम्भात में अवशेष प्राप्त हुए वह 9000 वर्ष पुराने हैं।

इनमें से कुछ महानुभावों ने नकारात्मक प्रतिक्रिया देते हुए सही बातों को इंगित कर दिया है। प्रो. दीपक पटेल ने कहा कि ऐसा है तो फिर हमें अंग्रेजी तथा पी.एच.डी. तब को बन्द करना होगा। जामिया हमदर्द के डीन प्रो. अफताब ने कहा कि भारतीय कानून भी अंग्रेजी पद्धति पर आधारित है। यह सारी बातें हमारे देश की नहीं हैं और हमारी संस्कृति-प्रकृति के अनुकूल भी नहीं है तो बदलने में क्यों हिचकिचाहट है। यहां तो मात्र हिचकिचाहट ही नहीं है अगर किसी ने भारतीय दृष्टिकोण से परिवर्तन का प्रयास किया तो हमारे तथाकथित विद्वान तुरंत ही हो-हल्ला शुरू करते हैं। भगवाकरण हो रहा है। सेकुलरिज्म खतरे में है? यह सब पुराणपंथी है, प्रगति एवं विकास के विरोधी है आदि आरोपों की बौछार बरसा देंगे।

पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी एवं लेखक अमृतलाल ने ठीक ही कहा कि जो हमारी संस्कृति एवं प्रकृति के अनुकूल नहीं है उसको बदलना चाहिए। डॉ. जोशी ने आगे कहा कि दीक्षांत समारोह में गाऊन तब शुरू हुआ जब चर्च के द्वारा पश्चिम के देशों में शिक्षा संचालित की जाती थी। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने ठीक ही कहा कि इस पर देशव्यापी बहस होनी चाहिए।

वास्तव में देश की तमाम प्रकार की व्यवस्थाएं हमारे संस्कृति एवं प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। इसको दूसरे शब्दों में कहना है तो हर व्यवस्था विज्ञान एवं तर्क सम्मत होनी चाहिए। भारत में सभी परम्परायें एवं व्यवस्थाओं के बारे में बहुत ही लम्बी एवं गहरी सोच के बाद ही उसको अपनाया गया था। इसलिए अंग्रेजों के आने के बाद एवं वर्तमान में चलायी जा रही सारी व्यवस्थाओं के बारे में पुनर्विचारकिये जाने की आवश्यकता है। ■

मेरी स्मृतियां

-अतुल कोठारी

मेरा अ.भा.वि.प. में 1979 में प्रवेश हुआ। प्रथम अनुभव ही मजेदार एवं यादगार है। उस समय गुजरात की जामनगर इकाई के मंत्री ने बैठक में आने का निमंत्रण दिया। मैं और मेरा मित्र रात्रि 9:00 बजे बैठक में गये। गुजरात में अपना बाजार नाम से एक सहकारी संस्था चलती थी। वह सायं के बाद बन्द होने के पश्चात उसके आगे एक बरामदा था, जहां मोहल्ले के सरकारी बिजली के खम्बे के प्रकाश में बैठक थी। गांव में रहने के कारण ज्यादा विचित्र नहीं लगा, बाद में तो उस जगह पर अनेक बैठकें हुई और उस बैठक में हुए निर्णयों के आधार पर अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

जामनगर में 1982 में प्रदेश का अधिवेशन हुआ था। उस समय कुछ कारणवश मैं ज्यादा सक्रिय नहीं था। उस अधिवेशन के बाद जामनगर इकाई पर देनदारी हो गई थी। इस कारण से कुछ महीने तक इकाई का कार्य भी स्थगित हो गया। जब पुन: गतिविधि शुरु हुई तब जिनके पैसे देने बाकी थे वह पुन: मांग करने लगे। लगभग पांच से छ: हजार तक देनदारी थी। इस हेतु एक दिन वहां की नगर टीम की बैठक हुई। बैठक में चर्चा में एक सुझाव आया कि हम म्यूजिकल ऑर्केस्ट्रा का आयोजन करें। उस विषय पर लम्बी चर्चा चली। बैठक में कुल छ: लोग थे। उसमें से दो का मत था कि यह कार्यक्रम करना चाहिए। उन दोनों का भी मानना था कि अपने संगठन के हिसाब से यह कार्यक्रम ठीक नहीं है लेकिन कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। इसलिए मजबूरी में एक बार इस कार्यक्रम को करना चाहिए। तीन कार्यकर्ता इसके विरोध में थे। एक कार्यकर्ता का कोई मत नहीं था। इस स्थिति में निर्णय क्या हो सकता है? उत्तर नकारात्मक ही आएगा लेकिन निर्णय कार्यक्रम करने के पक्ष में हुआ। जब कार्यक्रम की तैयारी शुरू हुई, टिकिट छापे गये, उसके बाद सबसे ज्यादा टिकट बेचने का कार्य जिस कार्यकर्ता ने किया वह इस कार्यक्रम करने के विरोध में था। इकाई के तत्कालीन अधयक्ष भी इस कार्यक्रम के समर्थन में नहीं थे। उनका नियमित क्रम था कि वह रात्रि 9:00 बजे सो जाते थे। जिस दिन रात्रि 9:00 बजे कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और सारी व्यवस्था निपटाते समय रात्रि के 2:00 बजे, उस दिन अध्यक्ष जी तब तक हमारे साथ जागते रहे और रात्रि 2:30 बजे सबको चाय पिलाकर घर गये। (अन्यथा हम लोगों की रात्रि चाय पीने की आदत को वह ठीक नहीं मानते थे) अंतत: म्यूजिकल ऑर्केस्ट्रा का कार्यक्रम सफल रहा। सारी देनदारी समाप्त हो गयी। उसके बाद 27 वर्ष में हमने दूसरी बार उस प्रकार का कार्यक्रम नहीं किया। वास्तव में इसी अनुभव से टीम की भूमिका समझ में आयी। टीमवर्क यह परिषद् की सबसे बड़ी विशेषता है। इस कार्यपद्धति के कारण ही हम साठ वर्षो से मात्र टिके नहीं है बल्कि आगे भी बढ़ रहे है, और बढ़ते जाएंगे।

उसके बाद सबसे ज्यादा टिकट बेचने का कार्य जिस कार्यकर्ता ने किया वह इस कार्यक्रम करने के विरोध में था। इकाई के तत्कालीन अधयक्ष भी इस कार्यक्रम के समर्थन में नहीं थे। उनका नियमित क्रम था कि वह रात्रि 9:00 बजे सो जाते थे। जिस दिन रात्रि 9:00 बजे कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और सारी व्यवस्था निपटाते समय रात्रि के 2:00 बजे, उस दिन अध्यक्ष जी तब तक हमारे साथ जागते रहे और रात्रि 2:30 बजे सबको चाय पिलाकर घर गये।

1985 में जामनगर जिले की द्वारका तहसील के गढेची गांव में श्रमानुभव शिविर था। यह शिविर हमारे लिए विशेष था, क्योंकि उसी समय राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद की बैठक होने के कारण कुछ प्रमुख कार्यकर्ता अनुपस्थित

थे। शिविर में 100 से अधिक संख्या थी। शिविर के तीसरे दिन दोपहर को हमारे संभाग संगठन मंत्री ने आश्चर्यजनक तरीके से विषय निकाला कि मुझे पूर्णकालिक निकलना चाहिए। मैंने उन्हें कहा आप मजाक क्यों कर रहे हैं? (उस समय मैं पारिवारिक व्यवसाय में व्यस्त था और अच्छे व्यवसायी बनने की ओर प्रयासरत था) इसके बाद भी उन्होंने बड़ी गम्भीरता से बात जारी रखी। बातचीत के अन्त में मैंने कहा विचार करूंगा। मन में चिन्तन शुरु हो गया। दुविधा थी, संघर्ष था, अनिर्णायक स्थिति थी। उसी दिन शिविर का समापन हुआ। उस शिविर में तीन दिन उसी गांव की बर्तन साफ करने वाली, अनपढ़ महिला थी। (आज के सन्दर्भ में)। वह अनपढ़ तो थी लेकिन बड़ी समझदारी से बीच-बीच में हमको प्रश्न पूछती थी, आप कहां से आये हैं? क्या कर रहे हैं? यहां क्यों आए हैं? आपको इस से क्या प्राप्त होगा? आपको सरकार खर्च देती है क्या? जब समापन के तीन दिन कार्य के 85 रुपए हम देने गये तब उन्होने पैसे लेने से मना कर दिया। हमारे बहुत आग्रह के बाद 25 रुपये लिये और 20 रुपये की रसीद हमने उनको दी। आज लगता है कि शायद उस घटना ने पूर्णकालिक निकलने के विचार को गति प्रदान की होगी।

मेरा सौभाग्य था कि मेरा प्रथम पूर्णकालिक वर्ग 1986 में इन्दौर में हुआ था। यह अखिल भारतीय वर्ग था। उस वर्ग के समापन में तत्कालीन अ.भा. संगठन मंत्री मा. मदनदास जी (वर्तमान में रा.स्व. संघ के अ. भा. प्रचारक प्रमुख) का भाषण था।

सम्पूर्ण भाषण तो स्मरण नहीं है लेकिन दो बातें अवश्य याद है। प्रथम उन्होंने कहा कि मैं 16 वर्ष से पूर्णकालिक हूं लेकिन कल पूर्णकालिक निकला हूं ऐसा लगता है। वह बात उस समय तो ज्यादा समझ में नहीं आयी लेकिन मा. मदन जी ने ऐसा क्यों कहा?

उसका अर्थ क्या है? यह चिन्तन चलता रहा। बाद के वर्षो में अनेक बार मदन जी से बातचीत का अवसर मिलता रहा, अभी भी वह क्रम जारी है। तब धीरे-धीरे यह बात समझ में आयी कि व्यक्ति हर दिन, हर पल सीखने की मानसिकता रखता है, तो हम भी मा. मदनदास जी जैसा अनुभव कर सकते हैं। दूसरी बात उन्होंने वर्ग में आये हुए पूर्णकालिकों को समय देने हेतु, आवहान् किया की देश को अधिक से अधिक हम क्या दे सकते है? उन्होंने ही उत्तर दिया हमारे पास एक जीवन के अलावा देने के लिए और है भी क्या? कभी-कभी (मजाक) करके मित्रें के बीच में कहता हूं कि उस बात का स्मरण आज तक क्यों है? मैं ही उत्तर देता हूं कि इस बात का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पल स्मरण रहे, यही ईश्वर से प्रार्थना। ■

राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् बैठक

अभाविप की राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् बैठक आगामी 27 से 30 मई देहरादून (उत्तराखण्ड) में होने जा रही है। इस बैठक का संचालन राष्ट्रीय अध्यक्ष प्राध्यापक मिलिंद मराठे एवं राष्ट्रीय महामंत्री विष्णुदत्त शर्मा करेंगे। बैठक में कुल मिलाकर देश का वर्तमान परिदृश्य व देश के सम्मुख चुनौतियां, संगठनात्मक व कार्यात्मक समीक्षा की जाएगी। विभिन्न प्रान्तों में विद्यमान राज्य की शिक्षा की समस्याओं के ऊपर चर्चा व उस पर आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की जाएगी। साथ ही बेंगलूरु में आयोजित 56वें राष्ट्रीय अधिवेशन के सम्बंध में भी निर्णय लिए जाएंगे।

बैठक में क्रमशः शिक्षा का व्यापारीकरण, नक्सलवाद तथा अल्पसंख्यक आरक्षण पर प्रस्ताव पारित होने हैं। अभाविप के षष्ठिपूर्ति वर्ष में चलाये गये सम्पर्क अभियान के संदर्भ में समीक्षा व अनुवर्तन के विषय में भी चर्चा होगी।

दिल्ली विश्वविद्यालय से निकलता जहर

दिल्ली के मायापुरी कबाड़ी बाजार से निकलते विकिरण और उससे पीड़ित सात व्यक्तियों की चिंताजनक स्थिति से पूरा देश स्तब्ध है। मायापुरी कबाड़ी बाजार में रेडियोएक्टिव कोबाल्ट-60 का मामला जब दिल्ली विश्वविद्यालय से जुड़ता है तो स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो जाती है।

कोबाल्ट-60 एक अप्राकृतिक समस्थानिकहै जो विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों में उपयोग होता है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने करीब 25 वर्ष पहले एक irradiating machine करीब 30,000 डॉलर में खरीदी जिसमें कोबाल्ट-60 की कुछ पैन्सिलें थी। कोबाल्ट-60 की पैन्सिलें रेडियोएक्टिव है अत: सतत रेडियेशन देती रहती हैं। जब तक मशीन में पैंसिलें सीसे के आवरण में बन्द हैं तब तक रेडियेशन का खतरा कम रहता है परन्तु यदि यही कोबाल्ट-60 को सीसे के आवरण से निकाल दिया जाये तो आसपास के वातावरण में रेडियोधर्मी विकिरण फैल जाती है। रेडियोधर्मी विकिरण जीवजन्तुओं के लिए अत्याधिक हानिकारक है। जो भी विकिरण के सम्पर्क में आता है उसकी स्थिति तुरन्त चिन्ताजनक हो सकती है। परन्तु विकिरण के सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्ति जिन्हें तुरन्त किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं दिखाई देती उसे भी जीवन में कई प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है। यहां तक कि उसके आने वाले वंश में भी कुछ वंशानुगत दोष उत्पन्न हो सकते हैं।

सबसे अधिक चिन्ताजनक स्थिति यह है कि दिल्ली विश्वविद्यालय का पढ़ा-लिखा प्रशासन अत्यधिक लापरवाही के चलते कोबाल्ट-60 प्रस्थापित रेडियोधर्मिता वाली मशीन खुले बाजार में नीलाम कर देता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि वातावरण में रेडियोधर्मिता फैलती है और उसके सीधे सम्पर्क में आने वालों की जान पर बन आती है। दूसरी ओर दिल्ली विश्वविद्यालय का उपकुलपति घटना की नैतिक जिम्मेदारी तो लेता है परन्तु अपनी गलती और प्रभावित व्यक्तियों की जान की कीमत पैसों से आंक कर विश्वविद्यालय में कार्यरत सभी प्राध्यापकों से पैसे एकत्र कर इस पूरी घटना पर पर्दा डालने की कोशिश करता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति स्वयं एक जाने माने वैज्ञानिक हैं और अपने पांच साल के कार्याकाल में आधुनिकीकरण के नाम पर बहुत से ऐसे प्रयोग बीएससी के पाठ्यक्रम में लेकर आये हैं जिसमें बहुत से ऐसे रसायन इस्तेमाल होते हैं जो विषैले और कैंसरकारक हैं। यह रसायन हैं-एक्रिला माइड, नाइट्रोसेमाइन्स, इथीडियम ब्रोमाइड, नाइट्रोफ्लोरीन, सोडियम एजाइड आदि। नये प्रयोगों को शामिल करने पर किसी का विरोध नहीं हो सकता परन्तु क्या विश्वविद्यालय इन प्रयोगों से उपजे हानिकारक पदार्थ के निस्तारण करने में सजग है। क्या ये सभी रसायन प्रयोग के बाद नालों में बहा दिये जाते हैं?

दिल्ली विश्वविद्यालय में ऐसी कोई प्रणाली नहीं है जो हानिकारक कचरे के निस्तारण का ध्यान रखता है। विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही प्रयोगशालाओं में इस्तेमाल होने वाले सामान्य रसायन जैसे बेंजीन, क्लोरोफॉर्म, नाइट्रस, नाइट्रिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, सभी प्रयोगों के पश्चात नालों में बहाये जाते हैं। बेचारे दसवीं पास प्रयोगशाला सहायक को इस बात की जानकारी ही नहीं रहती कि वह कितने खतरनाक रसायनों से खेल रहे हैं। न ही विश्वविद्यालय प्रशासन उन्हें इस प्रकार का कोई प्रशिक्षण देता है जिससे इन खतरनाक रसायनों के विषय में कोई स्थायी जानकारी मिल सके।

इतना ही नहीं विज्ञान के कुछ प्रयोग ऐसे हैं जिसमें बहुत से बैक्टीरिया और फफूंद विभिन्न कालेजों और विभागों में तैयार होते हैं। इस प्रकार का सभी जैविक कचरा बहुत ही खतरनाक सिद्ध हो सकता है और विश्वविद्यालय ने ऐसी कोई प्रणाली विकसित नहीं की है जो इस जैविक (Biohazardous) करचे को विस्थापित करने के लिए जिम्मेदार हो।

कोबाल्ट-60 का प्रकरण विश्वविद्यालय प्रशासन पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह है और इस मामले पर विश्वविद्यालय की जवाबदेही तय होनी चाहिए।

आज भी विश्वविद्यालय प्रशासन के पास ऐसी कोई योजना या समिति नहीं है जो प्रत्येक प्रकार के हानिकारक कचरे के निस्तारण की जिम्मेदारी ले सके। भविष्य में यदि कोबाल्ट-60 जैसे खतरों से बचना है तो प्रशासन को प्राध्यापकों और प्रयोगशाला सहायकों को प्रशिक्षण देकर कचरा निस्तारण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनना चाहिए और एक केन्द्रीय प्रणाली विकसित करनी चाहिए जिससे किसी प्रकार का भी कूड़ा वातावरण प्रदूषित करने का माध्यम न बनें। ■

शिक्षा के बाजारीकरण की पाठशाला

सिनेमा ने समय-समय पर विभिन्न सामाजिक विकृतियों को सिल्वर स्क्रीन पर उकेरा है और इस बार निर्देशक मिलिंद उइके की फिल्म पाठशाला के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था के व्यवसायीकरण की ऐसी ही विकृति को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुति : उमाशंकर मिश्र

शैक्षिक संस्थानों और शिक्षा के व्यवसायीकरण की हकीकत बयां करती है फिल्म 'पाठशाला'। विद्यार्थियों को जीवन एवं सामाजिक सरोकारों की सीख देने की बजाय यदि स्कूल धन उगाही का केन्द्र बन जायें तो इसे आप क्या कहेंगे? सिनेमा ने समय-समय पर विभिन्न सामाजिक विकृतियों को सिल्वर स्क्रीन पर उकेरा है और इस बार निर्देशक मिलिंद उइके की फिल्म पाठशाला के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था के व्यावसायीकरण की ऐसी ही विकृति को उजागर करने का प्रयास किया गया है। पाठशाला में दर्शाया गया है कि स्कूलों में शिक्षा से अधिक पैसे को तरजीह दी जाती है। आज देश के अधिकतर शैक्षिक संस्थान बिजनेस इकाई के रूप में खुद को स्थापित करना चाहते हैं और इसके लिए संस्थानों की ब्रांडिंग उत्पाद की भांति की जाती है। प्रत्येक संस्थान विज्ञापनों एवं इवेंट्स के माध्यम से अपनी ब्रांड वैल्यू या कहें कि मार्किट वैल्यू स्थापित करने की कवायद में जुटा हुआ है, जिससे कि धनकुबेरों के बच्चों को शिक्षा देने के नाम पर मोटी रकम वसूली जा सके। लेकिन इस तरह के चलन से शिक्षा के व्यवसायीकरण को बढ़ावा मिलेगा और धीरे-धीरे शिक्षा गरीब छात्रों की पहुंच से दूर होती चली जायेगी।

स्कूलों में शिक्षा से ज्यादा पैसे का बोलबाला है। विज्ञापन के माध्यम से लोगों को ये स्कूल आकर्षित करने में भले ही सफल हो जाते हों, लेकिन शैक्षिक गुणवत्ता के मामले में दूर तक इनका सरोकार नज़र नहीं आता। एक ऐसे ही स्कूल 'सरस्वती विद्या मंदिर' की कहानी है फिल्म 'पाठशाला'। फिल्म में सामाजिक सरोकार से जुड़ा एक संवेदनशील मुद्दा उठाया है और उन लोगों पर निशाना साधा है, जो पैसे कमाने के लिए शिक्षा के व्यापार को माध्यम बना रहे हैं। पाठशाला शिक्षा के ऐसे व्यापारियों की कहानी है जिनका छात्रों के करियर, उनकी आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमि और सामाजिक विकृतियों से कोई सरोकार नहीं है, उन्हें फिक्र होती है तो सिर्फ और सिर्फ अपनी मोटी कमाई की।

विषयवस्तु तो ठीक है, लेकिन जिस बात को लेकर पाठशाला फिल्म को कटघरे में खड़ा किया जा रहा है, वह है इसकी पटकथा का ढीलापन। शायद यही कारण है कि फिल्म की शुरुआत तो ठीक होती है, लेकिन बीच में भटकने सी लगती है।

फिल्म	:	*पाठशाला*
कलाकार	:	*शाहिद कपूर, आयशा टाकिया, नाना पाटेकर, सौरभ शुक्ला, सुशांत सिंह, अंजन श्रीवास्तव, सुष्मिता मुखर्जी, स्विनी खारा, अविका गोर, अली हाजी, द्विज नरेंद्र यादव*
निर्देशक	:	*मिलिंद उइके*
बैनर	:	*पेपरडॉल एंटरटेनमेंट*
निर्माता	:	*शायरा खान*
संगीत	:	*हनीफ शेख*

राहुल प्रकाश उद्यावर (शाहिद कपूर), उनकी सहयोगी अंजली (आयशा टाकिया) और सुशांत सरस्वती विद्या मंदिर स्कूल के अध्यापक की भूमिका में हैं। जबकि स्कूल के प्रधानाचार्य का किरदार नाना पाटेकर ने निभाया है।

खुद शाहिद कपूर ने फिल्म के बारे में कहा है कि-'ये फिल्म अध्यापकों के उस संघर्ष की कहानी है जहां वो बच्चों की पढ़ाई और खेल-कूद के स्तर को लगातार सुधारने की कोशिश करते हैं, लेकिन उन्हें कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।'

ज़ाहिर है कि इस बात के पीछे शाहिद का इशारा स्कूल प्रबंधन की ओर था। फिल्म इस बात की ओर संकेत करती है कि अध्यापक पढ़ाई, खेलकूद और अन्य गतिविधियों में संतुलन बनाये रखने का प्रयास करते हैं, लेकिन उन्हें प्रबंधन के आगे नौकरी के भय से झुकना पड़ता है।

शाहिद कपूर मानते हैं कि वर्तमान स्कूली शिक्षा की दशा पर आधारित फिल्म 'पाठशाला' एक चुनौती भरी कहानी है। शिक्षा जैसे विषयों पर आम तौर पर फिल्में बनाये जाने से इस लिए परहेज किया जाता है, क्योंकि माना जाता है कि ऐसी फिल्म उबाऊ एवं डॉक्युमेंट्री की तरह होगी। शायद तभी ऐसी फिल्मों को मनोरंजक बनाना चुनौती होती है। बहरहाल इस फिल्म में कई ऐसे लम्हें हैं जो छात्रों की समस्याओं पर रोशनी डालते हैं। स्कूल फीस अचानक बढ़ जाना और बच्चों के माता पिता का समय पर फीस न दे पाने से स्कूल प्रशासन द्वारा उन्हें शर्मिन्दा किया जाना कुछ ऐसे ही पल हैं जो व्यावसायिक स्कूलों की असंवेदनशीलता की कलई खोलते हैं।

स्कूल प्रशासन भले ही शिक्षा के व्यवसायीकरण की ओर कदम बढ़ा रहे हों, लेकिन फिल्म पाठशाला के कलाकारों ने इस सामाजिक मसले पर संजीदा रवैया अपनाते हुए जिम्मेदारी की मिसाल पेश की है। शाहिद कपूर पाठशाला जैसी फिल्म इसलिए करना चाहते थे, ताकि उसके माध्यम से जनमानस का ध्यान इस सामाजिक बुराई की ओर खींचा जा सके। दूसरी ओर नाना पाटेकर को तो फिल्म का विषय इतना पसंद आया कि उन्होंने इसके लिए पारिश्रमिक लेने से ही इंकार कर दिया और मेहनताने के रूप में मिले पैसे को स्वयंसेवी संस्थाओं को दान कर दिया।

स्कूल की माली हालत के खराब होने का हवाला देकर प्रशासन छात्रों से मोटी रकम वसूलने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाने लगता है। नाम की चाहत में स्कूल की गतिविधियां बाजार में बेची जाने लगती हैं। शहर के व्यापारियों से मिलकर प्रबंधान फरमान जारी कर देता है कि बच्चों को पढ़ाई, लिखाई से लेकर खेलकूद का सामान, यूनीफार्म इत्यादि सब कुछ स्कूल से ही खरीदना होगा। जबकि यहां दाम बाजार से काफी अधिक रखे जाते हैं। यही नहीं इन स्कूलों की कमाई के कई अन्य तरीकों को भी फिल्म में दर्शाया गया है। स्कूल का स्वरूप कार्पोरेट कम्पनी की तरह गढ़ा जाने लगता है। यही नहीं फिल्म में उन स्कूलों की भी चर्चा की गई है जो बाहर से किताबें-कापियां खरीदने पर बच्चों को सजा तक सुना देते हैं।

इन सब कारणों से सरस्वती स्कूल के अध्यापकों में रोष उत्पन्न हो जाता है और वे सभी बच्चों के साथ मिलकर शाहिद कपूर की अगुआई में हड़ताल कर देते हैं। जिससे स्कूल की छीछालेदर मच जाती है। मीडिया भी बच्चों की हड़ताल को बेचने के लिए लालायित हो उठता है। अंततः मंत्री को इस मामले में हस्तक्षेप करते हुए स्कूल के प्रबंधक को फटकार लगानी पड़ती है। बौखलाया हुआ प्रबंधक तत्काल इस शिक्षा के कमोडिफिकेशन की मुहिम को रोकने का आदेश जारी कर देता है।

कुल मिलाकर फिल्म एक संदेश तो देती है, अंत में समस्या के समाधान के लिए जनदबाव एवं आंदोलनात्मक रवैया अपनाने के लिए भी प्रेरित करती है, लेकिन जोरदार तरीके से समस्या को उठाने में अभी कसर बाकी जान पड़ती है। शायद तभी शिक्षा के व्यावसायीकरण के दानव का मुकाबला किया जा सकेगा।

बहरहाल फिल्म के किरदारों में शाहिद कपूर और आयशा ने अपनी भूमिका के साथ न्याय किया है और नाना पाटेकर ने हर बार की तरह इस बार भी अपने अभिनय से लोगों को आकर्षित किया है। स्कूल मैनेजर के रूप में सौरभ शुक्ला और चपरासी की भूमिका में अंजन श्रीवास्तव ने भी अच्छी अदाकारी दिखाई है।

यहां यह टिप्पणी आवश्यक है कि निर्माता-निर्देशक-पटकथा लेखक ने विद्यालय का नाम 'सरस्वती विद्यामंदिर' रखा जो वास्तव में देश में विद्यालयों की एक बड़ी श्रृंखला है। इसके द्वारा संचालित हजारों विद्यालयों में भारतीय संस्कृति और संस्कार की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा के व्यापारीकरण के खिलाफ खमठोंक कर खड़े इन सरस्वती विद्या मंदिरों के उल्लेखनीय योगदान को नकारते हुए फिल्म में एक कॉर्पोरेट ढांचे पर चलने वाले विद्यालय को 'सरस्वती विद्यामंदिर' नाम देना अपमानजनक है। साथ ही अंग्रेजी नाम वाले जिन कान्वेंट स्कूलों में यह व्यापारीकरण फल-फूल रहा है, उनसे मिलता-जुलता नाम रखने से संभवतः जान-बूझकर बचा गया है। -सम्पादक

■

राष्ट्रविरोधी तत्वों से लड़ने का साहस अभाविप का स्वाभाविक गुण -दत्तात्रेय होसबोले

कार्यालय के उद्घाटन समारोह में मंचस्थ अतिथिगण

नवादा में अभाविप के नवनिर्मित कार्यालय के उद्घाटन समारोह के अवसर पर रा.स्व.संघ के सहसरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबोले ने कहा-

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ही ऐसा छात्र संगठन है जो विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण का पाठ पढ़ाता है। राष्ट्रविरोधी तत्वों, आतंकवादियों से लड़ने का साहस भी पैदा करता है।

उन्होंने आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद कार्यालय में नक्सली हिंसा में शहीद हुए अभाविप के कार्यकर्ताओं की तस्वीरें इस बात को प्रमाणित करती है कि अभाविप के कार्यकर्ता राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार है। यही वो साहस है जो अभाविप के द्वारा कार्यकर्ता को प्रदान किया जाता है। जिसके बल पर देश की अस्मिता की रक्षा करने के लिए करोड़ों युवा मर मिटने को तैयार होते है। उन्होंने परिषद् के कार्यकर्त्ताओं की वीरता व क्रान्तिकारिता की चर्चा करते हुए कहा कि एक आंख में भारत मां के वेदना का आंसू है तो दूसरी आंखों में राष्ट्रविरोधियों से लोहा लेने को तैरता खून। एक तरह से विद्यार्थी परिषद् भारत के नौजवानों के चरित्र निर्माण की कुंजी है।

क्षेत्र प्रचारक मा. स्वांत रंजन ने कहा कि विद्यार्थी परिषद् एक अदभूत विचारधारा है जो ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करता है जो देश एवं राष्ट्र के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को कम मानते हैं। ऐसे विद्यार्थी परिषद् के कार्यकर्त्ता है जो अपनी युवावस्था को भारतमाता की जयकारा लगाने में लगा देते हैं।

इस अवसर पर अभाविप के क्षेत्रीय संगठन मंत्री दिनेश कुमार ने कहा कि 4 अप्रैल 2009 को इस संस्कार के मंदिर का निर्माण हेतु नींव पड़ी थी। कार्यकर्ताओं ने अपने जेब खर्च से बीस रुपए जैसी छोटी राशि तक बचाकर इस भवन का निर्माण कराया। जिस प्रकार से कार्यत्ताओं ने छोटी-छोटी राशि के संग्रह के समय एक वर्ष की समयावधि बहुत कम थी। परंतु कार्यकर्त्ता के संकल्पशक्ति एवं समाज के योगदान ने यह सिद्ध कर दिया कि कोई भी बड़ा कार्य संकल्पशक्ति एवं ईश्वरीय कार्य के आधार पर सम्पन्न होने में कठिनाई नहीं होती है। यह भवन समाज निर्माण का केन्द्र है। यह भवन युवाओं के लिए संस्कार केन्द्र बनेगा जो कार्यकर्ताओं को राष्ट्र पुनर्निर्माण के लिए प्रेरित करेगा।

इस अवसर पर आर.एस.एस. के प्रान्त प्रचारक अनिल ठाकुर, विधायक अनिल सिंह, भारतीय मंजदूर संघ के संगठन मंत्री शिवनारायण प्रसाद, पूर्व प्रदेश अध्यक्ष प्रो. नरेन्द्र कुमार, युवा मोर्चा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष संजीव चौरसिया, प्रदेश संगठन मंत्री गोपाल शर्मा, नवीण केशरी, निखिल रंजन, श्रवन कुमार वर्णवाल सहित विद्यार्थी परिषद् के सदस्य उपस्थित थे। इस अवसर पर मंच की अध्यक्षता समाजसेवी आर.पी साहु, मंच संचालन अमित कुमार, धन्यवाद ज्ञापन जय प्रकाश कुमार ने किया। ■

साढ़े तीन साल में डॉक्टर बनाने की कैसी तरकीब

■ आशीष अंशु

डीडीएस कम्यूनिटी सेन्टर के लिए काम करने वाली पूण्यम्मा जो किसानों की समस्या पर डाक्यूमेन्ट्री फिल्म बनाती हैं, आन्ध्र प्रदेश में बीटी कॉटन पर फिल्म बनाने के दौरान अपनी खुली जीप से नीचे गिर पड़ी। उन्हें चोट आई, जिससे उनकी कलाई की हड्डी टूट गई। उसके बाद वह अपनी टूटी हुई हड्डी को जुड़वाने के लिए हैदराबाद के एक सरकारी अस्पताल 'निजाम इंस्टीट्यूट फॉर मेडिकल साइंस' में गई। सरकारी अस्पताल होने की वजह से उनका ईलाज तो यहां मुफ्त में हो रहा था लेकिन दवा और दूसरी सामग्रियों का खर्च 30,000 रुपए आ रहा था। यह ईलाज के लिए एक बड़ी रकम थी इसलिए उन्होंने पिटला जाने का निर्णय लिया। पिटला उस गांव का नाम है, जो टूटी हड्डी को जोड़ने के लिए उस क्षेत्र में प्रसिद्ध है। उस गांव में देसी तरीके से ईलाज कराने के बाद उनका एक पैसा खर्च नहीं हुआ और तीन महीने में वे स्वस्थ हो गई।

पूण्यम्मा का अनुभव आप में से कइयों का होगा। इस देश में सरकारी अस्पताल में ईलाज कराने का अर्थ बिल्कुल यह नहीं है कि आपका ईलाज निशुल्क हो रहा है। पटना के एक प्रतिष्ठित सरकारी अस्पताल में रोगियों को दवा की पर्ची एक खास दुकान से दवा लाने की हिदायत के साथ दी जाती थी और उस दुकान पर सारी दवाएं एमआरपी पर मिलती थी। जबकि बाकि कोई भी दवा दुकानदार उन्हीं दवाओं पर तीस फीसदी तक की छूट आसानी से दे देता था।

अब सरकार पूरे देश में ग्रामीण एमबीबीएस डॉक्टरों का नेटवर्क खड़ा करने वाली है। ऐसे में स्वास्थ की वर्तमान व्यवस्था पर सवाल उठना लाजमी है। एमसीआई (मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया) के प्रस्ताव को गंभीरता से लेते हुए स्वास्थ एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 300 जिलों में मेडिकल कॉलेज खोलने की घोषणा कर दी है। गांव की स्वास्थ सेवा को बेहतर करने के लिए खुलने वाले इस कॉलेज में किसी प्रकार की प्रवेश परीक्षा नहीं होगी। बच्चों का दाखिला 10वी और 12वीं के प्राप्त अंकों के आधार पर किया जाएगा। हर एक मेडिकल कॉलेज में 30 से 50 तक सीटें होंगी। मेडिकल स्कूल से स्नातक अपने गृह राज्य के गांवों में कम से कम पांच साल के लिए पदस्थापित किए जाएंगे। पहले पांच सालों तक के लिए उन्हें राज्य का मेडिकल काउंसिल लायसेंस देगा। जिसे पांच सालों तक प्रत्येक साल नवीनीकरण कराना अनिवार्य होगा। पांच साल के बाद उनका यह लायसेंस स्थायी हो जाएगा। लायसेंस मिलने के बाद यह ग्रामीण डॉक्टर अपने राज्य के गांवों में या किसी शहर में क्लिनिक खोल पाएंगे। इन पांच सालों में गांवों में जाने के लिए नया बैच तैयार हो

चुका होगा। इस तरह गांव की स्वास्थ व्यवस्था को तंदरुस्त करने की एक स्थायी व्यवस्था एमसीआई और स्वास्थ मंत्रालय के संयुक्त प्रयासों से की जा रही है।

बीएचआरसी (बैचलर ऑफ रुरल हेल्थ केयर) के नाम से तैयार किया गया साढ़े तीन साल का यह पाठ्यक्रम ग्रामीण एमबीबीएस के नाम से लोगों के बीच पहचान पा रहा है। यह ग्रामीण डॉक्टर गांव के प्राथमिक स्वास्थ केन्द्र और उपकेन्द्र स्वास्थ्य केन्द्रों पर तैनात होंगे। वर्तमान स्थिति यह है कि देश के 80 फीसदी डॉक्टर 20 फीसदी शहरी जनता की सेवा में लगे हैं, और बाकी बचे 80 फीसदी गांव और छोटे शहर के लोगों को 20 फीसद डॉक्टरों के भरोसे छोड़ दिया गया है। अब ऐसे में गांव वालों का विश्वास झाड़-फूंक, और झोला छाप डॉक्टरों पर ना बढ़े तो क्या हो? एक अनुमान के अनुसार हमारे देश की 75 फीसदी आबादी अब भी झोला छाप डॉक्टरों के भरोसे ही है। देश में सरकार की तरफ से दी जा रही स्वास्थ सुविधाओं में असंतुलन दिखता है। गांव-शहर का असंतुलन। राज्य-राज्य का असंतुलन।

स्वास्थ एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा 2008 में जारी विज्ञप्ति के अनुसार देश में मेडिकल कॉलेजों की कुल संख्या 271 है। राज्यवार यदि इन कॉलेजों की उपस्थिति का आंकड़ा देखें तो यह बेहद असंतुलित है। 19 करोड़ आबादी वाले उत्तर प्रदेश में कुल 19 मेडिकल ॅज हैं और 03 करोड़ आबादी वाले केरल में मेडिकल कॉलेजों की संख्या 18 है। खैर, बात पूरे भारत की करें तो यहां प्रति 1500 लोगों पर एक डॉक्टर नियुक्त है। जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन 1:250 के अनुपात की अनुशंसा करता है। अब ऐसे समय में अपने अनुपात को दुरुस्त करने की जल्दबाजी में साढ़े तीन साल की पढ़ाई कराके ग्रामीण एमबीबीएस के नाम पर जो पढ़े लिखे झोला छाप डॉक्टर बनाने की कवायद सरकार कर रही है, उसकी जगह पर यदि वह थोड़ा धयान हमारे वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों मसलन आयुर्वेद, यूनानी चिकित्सा पद्धति, एक्युप्रेशर, एक्यूपंचर पर देती तो वह अधिक कारगर साबित हो सकता है। वर्तमान में यदि हम पारंपरिक तरह से ईलाज करने वालों की संख्या भी एमबीबीएस डॉक्टरों के साथ जोड़ लें तो 1:1500 का अनुपात घटकर 1:700 का हो जाएगा।

यदि सरकार की तरफ से अपनी स्वास्थ्य व्यवस्था को दुरुस्त करने के लिए किसी नई योजना पर काम करने की जगह सिर्फ अपने स्वास्थ के मौजूदा ढांचे को मजबूत करने की कोशिश की जाए तो यह देश की स्वास्थ व्यवस्था को दुरुस्त करने की राह में बड़ी पहल होगी। देश में 10 लाख के आस-पास प्रशिक्षित नर्स हैं, 03 लाख के आस-पास सहायक नर्स हैं। 07 लाख से अधिक आशा (एक्रेडिएटेड सोशल हेल्थ एक्टिविस्ट) हैं। गांवों के लिए नर्स, पुरुष कार्यकर्ता, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता हैं। यदि इन लोगों की सहायता ही सही तरह से ली जाए तो देश की स्वास्थ समस्या काफी हद तक सुलझ सकती है।

पूरे भारत की करें तो यहां प्रति 1500 लोगों पर एक डॉक्टर नियुक्त है। जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन 1:250 के अनुपात की अनुशंसा करता है। अब ऐसे समय में अपने अनुपात को दुरुस्त करने की जल्दबाजी में साढ़े तीन साल की पढ़ाई कराके ग्रामीण एमबीबीएस के नाम पर जो पढ़े लिखे झोला छाप डॉक्टर बनाने की कवायद सरकार कर रही है, उसकी जगह पर यदि वह थोड़ा धयान हमारे वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों मसलन आयुर्वेद, यूनानी चिकित्सा पद्धति, एक्युप्रेशर, एक्यूपंचर पर देती तो वह अधिक कारगर साबित हो सकता है।

बहरहाल सन् 1946 में सर जोसेफ भोर की कमेटी की रिपोर्ट भी मेडिकल की शिक्षा के लिए कम से कम साढ़े पांच साल अवधि की अनुशंसा करती है। अचानक साढ़े तीन साल में डॉक्टर बनाने की कौन सी तरीका हमारे स्वास्थ एवं परिवार कल्याण मंत्री ढूंढ़ लाएं हैं, इस संबंध में उन्हें देश को दो-चार शब्द अवश्य कहना चाहिए। ■

आदिवासियों के बीच शिक्षा का दीप

विकास भारती की स्थापना 1983 में अशोक भगत, डा महेश शर्मा, रजनीश अरोड़ा और स्वर्गीय डा राकेश पोपली की पहल पर हुई थी। विकास भारती के वर्तमान सचिव अशोक भगत बिशुनपुर आदिवासी समाज के बीच काम करने के उद्देश्य से आए थे। नेतरहाट के पास बसा यह क्षेत्र विकास से बिल्कुल दूर खड़ा था। यहां जादू, टोना, अंधविश्वास का राज था। समाज के दबंग और जमींदार किस्म के लोगों ने गैर कानूनी जमीन पर दखल कर रखा था। इस क्षेत्र में काम करते हुए अब विकास भारती को 27 साल हो गए। आज इसके कार्यकर्ताओं की पहुंच उन ईलाकों में भी है। जहां उग्रवाद की वजह से पुलिस नहीं पहुंच पाती। इसी मेहनत का परिणाम है कि आज इस पिछड़े क्षेत्र में विकास की किरण नजर आती है। यहां के आदिवासी अब अपना अधिकार जानने लगे हैं। विकास भारती ने ना सिर्फ उन्हें जागरूक किया है बल्कि उन्हें शिक्षा के लिए भी प्रेरित किया है। इसके लिए उसने समाज में वंचित, अनाथ और विकलांगों शिक्षा पर अपने आपको विशेष केन्द्रित किया है। अनाथ बच्चों के लिए यहां श्रम निकेतन है, जहां बच्चों को एक जिम्मेवार नागरिक बनने की शिक्षा दी जाती है। विकलांग बच्चों के लिए यहां शक्तिमान केन्द्र है। जो उनके जरुरतों का विशेष ख्याल रखता है।

इस क्षेत्र में काम करते हुए अब विकास भारती को 27 साल हो गए। आज इसके कार्यकर्ताओं की पहुंच उन ईलाकों में भी है। जहां उग्रवाद की वजह से पुलिस नहीं पहुंच पाती। इसी मेहनत का परिणाम है कि आज इस पिछड़े क्षेत्र में विकास की किरण नजर आती है।

विकास भारती ने इस क्षेत्र में अपने काम की शुरूआत एक सर्वेक्षण कि' :जससे आदिवासियों के बीच काम करने की कितनी जरूरत है, इस बात को समझने में मदद मिली। छोटे स्तर से शुरू हुआ यह कार्य आज बिशुनपुर के 2000 गांवों में फैल चुका है। इसी वजह से उन बच्चों तक पहुंचने में संस्था को मदद मिलती है, जो बीच में किसी कारण वश अपनी पढ़ाई छोड़ चुके हैं। संस्था ने महसूस किया बच्चों के शिक्षा से दूर होने के कई कारण हैं, मसलन घर की माली हालत सुधारने की कोशिश में अथवा घर से स्कूल दूर होने की वजह से। विकास भारती सर्व शिक्षा अभियान के साथ जुड़ कर दूरस्थ गांव में रहने वाले बच्चों को उनके गांव में शिक्षा उपलब्ध करवाने का भी काम कर रहा है। वाल्मीकी आश्रम, शबरी आश्रम, निवेदिता आश्रम, विश्वकर्मा आश्रम जैसे नौ आश्रम में अलग-अलग लगभग दर्जन भर जनजातियों के सैकड़ों बच्चे पढ़ रहे हैं। दुर्गम स्थल में रहने वाली बालिकाओं के शिक्षा के लिए एक सरकारी कार्यक्रम का संचालन भी विकास भारती कर रही है। जिन गांवों बालवाड़ी नहीं है, उन गांवों में बच्चों की शिक्षा के लिए बालपन केन्द्र बनाकर संस्था बच्चों को स्कूली शिक्षा उपलब्ध करा रही है।

अशोक भगत जिस क्षेत्र में काम कर रहे हैं, वह क्षेत्र पूरी तरह से नक्सल प्रभावित है। वे मानते हैं कि यदि आप ईमानदारी से स्वार्थ को छोड़कर समाज के लिए कुछ करने की ठान लेते हैं तो आमतौर पर समस्याएं नहीं आती हैं। आपका हर काम आसानी से हो जाता है।

श्री भगत के अनुसार निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर काम करने से आपके कार्य के राह में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती।

वास्तव में आदिवासी समाज के बीच अशोक भगत और उनकी संस्था विकास भारती जिस तरह का कार्य कर रही है, उनका यह कार्य सराहनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है। इस संस्था से पढ़कर निकले वंचित समाज के युवा जब समाज की मुख्य धारा में आएंगे तो निश्चित तौर पर उस वंचित समाज की पीड़ा को पूरी शिद्दत से समझेंगे। - ***प्रस्तुतिः आशीष कुमार 'अंशु'***

आईपीएल यानि खेल के पीछे का खेल

■ आशुतोष

आईपीएल की पिच पर शशि थरूर क क्लीन बोल्ड होने के बाद अब ललित मोदी पर शिकंजा कसता जा रहा है। उम्मीद है कि जल्दी ही उनको भी विदाई हो जायेगी। सचिन और सहवाग के चौके-छक्कों पर रीझने वाले नौजवानों और धोनी के बीए प्रथम वर्ष में फेल होने से आहत बालाओं की बात अगर छोड़ दी जाए तो लगभग पूरा देश यह समझ चुका है कि क्रिकेट के इस खेल के पीछे भी एक खेल चल रहा है।

आईपीएल के इस प्रकरण में जिस तरह परतें उघड़; रही हैं और एक के बाद एक नये नाम सामने आ रहे हैं उससे साफ है कि मनोरंजन के इस खेल में असली खिलाड़ी तो कोई और ही हैं। पिच पर खेलने वाले और गाहे-बगाहे पिच को खोदने वाले, दोनों की ही हैसियत इस खेल में जमूरों से ज्यादा नहीं है। दोनों की नकेल के पीछे उन लोगों के हाथ में है जिनका प्रत्यक्ष रूप से किक्रेट से कोई लेना-देना नहीं है।

वास्तव में क्रिकेट में यह युग परिवर्तन का दौर है। क्रिकेट के खिलाड़ियों को अपनी जान से भी ज्यादा चाहने वाले लोग अभी एक दिवसीय क्रिकेट के जुनून से बाहर नहीं आ सके हैं। एक दिवसीय मैच की खास बात थी पूरे देश की एक टीम होना। जब यह टीम पाकिस्तान से भिड़ती थी तो लोग बाउंड्री की ओर जाती बॉल को सांस रोककर देखते थे और फील्डर की हथेलियों में सामने वाली हर बॉल पर दर्शक को अपनी धड़कन रुकती सी लगती थी। वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी से सचिन का आउट होना देखा नहीं गया।

तब टीम किसी प्रदेश, शहर या कारोबारियों के किसी समूह का नहीं बल्कि देश का प्रतिनिधित्व करती थी। टीम की जीत का मतलब था देश की जीत और हार का मतलब था देश की हार। इसलिए जब भारत की टीम हारी तो प्रभाष जी के मुंह से निकले आखिरी शब्द थे-'अपन तो हार गये'। यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि आज इस प्रकरण पर प्रभाष जी क्या प्रतिक्रिया देते। शायद वे आज भी यही दोहराते-'अपन तो हार गये'। क्योंकि देश की जीत के जज्बे के साथ वे जिस क्रिकेट के खेल के दिवाने थे, वह तो हार ही गया।

ऐसा नहीं है कि परदे के पीछे चलने वाले इस खेल का किसी को अंदाजा नहीं था। आईपीएल का यह अवतार जिस तरह से सामने आया वह संदेह पैदा करने के लिए काफी था। इसके बाद जब खिलाड़ियों की नीलामी शुरू हुई और जानवरों की तरह बोलियां लगने लगीं तो यह पूरी तरह साफ हो गया था कि अब यह खेल न होकर मुनाफे का धंधा बन गया है।

इन धंधेखोरों को मालूम था कि मुनाफे की रकम को अधिक से अधिक मोटा बनाने के लिए जनता के मन में बैठी खिलाड़ियों की राष्ट्रीय छवि को निचोड़ना होगा। खिलाड़ियों को भी अपनी इस छवि को भंजाने में कोई नैतिक रुकावट नहीं महसूस हुई। उन्होंने भी दोनों हाथों से रकम बटोरने के लिए बाजार में खड़े होना स्वीकार कर लिया। स्थिति यहां तक आ पहुंची कि हाल ही में जब पाकिस्तान के खिलाड़ियों की बोली नहीं लगी तो उन्होंने इसका बुरा माना। कुछ ने तो इसे साजिश तक करार दिया।

थरूर और ललित मोदी की नोंक-झोंक जब बाहर आ ही गयी तो कुछ न कुछ होना ही था। हो सकता है कि दोनों को ही यह अंदाज न रहा हो कि बात इतनी दूर तक जायेगी। लेकिन यह भी ध्यान देने लायक हे कि ललित मोदी इतने कच्चे खिलाड़ी नहीं हैं कि इतनी सरलता से अंदर की बातें बाहर ले आयें। मुनाफे की बंदरबांट के लिए चल रही अंदर की रस्साकसी जब हद से ज्यादा बढ़ गयी होगी तभी मोदी ने यह तुरप का पत्ता फेंका होगा। हालांकि यह दांव भी उल्टा पड़ा और न केवल मोदी और थरूर को लेकर डूबा बल्कि कइ और दिग्गजों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने की

सम्भावना है।

अब आईपीएल में लगे बेनामी और विदेशी पैसे के निवेश, आईपीएल के पदाधिकारियों को मिलने वाली सरकारी सुविधाएं, उनेक द्वारा खड़ी की गयीं अकूत सम्पत्तियां, मंत्रियों ही नहीं उनकी प्रेमिकाओं तक को उपकृत करने के कारनामे आदि की खबरें धीरे-धीरे रिस कर बाहर आ रही है। जैसे-जैसे यह खबरें सुर्खियां बन रही हैं, क्रिकेट को देशभक्ति का पर्याय समझने वाले मासूम नागरिकों की नजरों पर पड़ा परदा हटता जा रहा है।

हो सकता है कि सचिन को भगवान का दर्जा देने वाले मासूमों (अथवा मूर्खों के स्वर्ग में जी रहे नौजवानों) के लिए यह आसमान से टपक कर खजूर में लटकने जैसी दुर्घटना हो किन्तु यह याद रहे कि जैसे-जैसे राज खुलते जायेंगे, यह खजूर भी सहारा देने से इनकार कर देगा। अंतत: तो इन्हें जमीनी हकीकत का सामना करना ही पड़ेगा और यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका यह भगवान किसी ठोस जमीन पर नहीं बल्कि उस लिजलिजी कीचड़ में खड़ा है जिस पर पद्म पुरस्कारों और रंगीन विज्ञापनों के गुलाब बिखेरे गये हैं। ■

कुलपति दीपक पेंटल तुरन्त इस्तीफा दे

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में आज दिल्ली विश्वविद्यालय प्रशासन की अत्यधिक लापरवाही के चलते कोबाल्ट 60 रेडियोधर्मिता वाली मशीन खुले बाजार में नीलाम करने के विरोध में केमेस्ट्री डिपार्टमेंट का घेराव किया एवं कोबाल्ट-60 के डिपार्टमेंट में दबाए जाने की पड़ताल की मांग को लेकर प्रतीकात्मक खुदाई भी की।

विद्यार्थी परिषद् के कार्यकर्ता आर्ट्स फैक्लटी में एकत्रित हुए एवं वहां से दिल्ली प्रशासन के खिलाफ नारेबाजी करते हुए कमेस्ट्री डिपार्टमेंट पहुंचे। छात्रों ने तख्ती, झण्डे, बैनर एवं फावड़े लिए हुए थे।

कार्यत्ताओं ने वी.सी. दीपक पेंटल एवं डा. परमार के विरुद्ध जमकर नारेबाजी की। डिपार्टमेंट के पास पुलिस एवं विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा रोके जाने पर झड़प भी हुई। कार्यकर्त्ताओं ने कोबाल्ट-60 के दबाए जाने की जांच की मांग को लेकर प्रतिकात्मक खुदाई भी की। विद्यार्थी परिषद् यह मांग भी करती है कि वी. सी. दीपक पटेल को नैतिकता के आधार पर तुरन्त इस्तीफा देना चाहिएं केवल मुआवजे देकर वो अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते। उनके पद पर रहते निष्पक्ष जांच सम्भव नहीं है। कोबाल्ट-60 की तरह अन्य कई रेडियोधर्मी पदार्थों का इस्तेमाल भी डी.यू. में हो रहा है एवं इसके निष्पादन की कोई व्यवस्था नहीं की गई हैं। ऐसे में मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल भी इस विषय पर बोलने से कतरा रहे हैं।

इसके पश्चात् एक प्रेस कान्फ्रेंस का आयोजन भी अभाविप द्वारा किया गया जिसको राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. पायल मग्गो, प्रदेश अध्यक्ष डॉ. प्रवीण गर्ग, प्रदेश मंत्री आशुतोष श्रीवास्तव, डुसू उपाध्यक्ष कृति वडेरा ने सम्बोधित किया। डॉ. पायल मग्गो ने कोबाल्ट 60 से जुड़े तमाम विषयों एवं प्रशासन द्वारा बरती गई घोर चूक की वजह वी.सी. दीपक पटेल की नासमझी को बताया।

■

कदम-कदम पर लड़ेंगे तुमसे

■ आशुतोष

आदिवासियों के नाम पर किया जा रहा कथित जनसंघर्ष कैसे हिंसक संघर्ष में बदल जाता है इसका ताजा उदाहरण दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में देखने को मिला। दंतेवाड़ा में शहीद हुए सीआरपीएफ के 76 जवानों की मौत को अभी चार दिन भी नहीं बीते थे कि जेएनयू में सक्रिय माओवादी समर्थक संगठन डीएसयू ने 'आदिवासियों के गीत' कार्यक्रम के नाम पर 9 अप्रैल को एक आयोजन किया। इस कार्यक्रम का सीधा संदेश था कि दंतेवाड़ा में जिन माओवादियों गोरिल्लों ने सीआरपीएफ के जवानों को मारा उनकी वाहवाही करना और इस कथित जनसंघर्ष को आगे बढ़ाना। हांलाकि डीएसयू ने विश्वविद्यालय प्रशासन से इस कार्यक्रम की अनुमति नहीं ली थी।

उधर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की स्थानीय इकाई को जब पता चला कि कार्यक्रम में सीआरपीएफ जवानों का अपमान किया जाएगा तो वो सक्रिय हो गए-आनन-फानन में तय किया गया कि एबीवीपी इस कार्यक्रम का विरोध करेगी। शाम 9.30 बजे डीएसयू ने अपना कार्यक्रम शुरू किया। उनकी तरफ से बाहर से आए कुछ लोगों ने आदिवासी गीत गाना शुरू किया। वहीं दूसरी तरफ एबीवीपी के करीब 20-25 कार्यकर्ता कार्यक्रम स्थल पर पहुंचे। कार्यकर्ताओं ने डीएसयू के लोगों से कहा कि आप ऐसा कार्यक्रम न करें जिससे आम जन भावना को ठेस पहुंचती हो लेकिन उन्होंने भी न सुनी। तब एबीवीपी कार्यकर्ताओं ने विरोध स्वरूप वहां नारेबाज शुरू कर दी। कार्यकर्ताओं ने नक्सली गुंडे हाय-हाय, सीआरपीएफ जवान अमर रहें के नारे लगाए।

करीब एक घंटे की नारेबाजी के बाद एनएसयूआई के 10-15 लोग भी वहां आए और उन्होंने भी कार्यक्रम का विरोध किया। दूसरी तरफ नक्सली समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी। दरअसल कैम्पस में डीएसयू में का काडर तो बहुत कम है लेकिन ऐसे मौकों पर आइसा का असली चेहरा सामने आ जाता है और वो भी नक्सलियों के समर्थन में उतर आती है। फिर वैसा ही हुआ। देखते-देखते उनकी तरफ 100-150 लोग इकट्ठा हो गए। उधर एबीवीपी के कार्यकर्ता लगातार दो घंटे नारेबाजी करने के बाद थोड़ा इधर-उधर हो गए। इस बीच एबीवीपी के दो-तीन कार्यकर्ताओं को कुछ नक्सल समर्थक छात्र-छात्राओं ने घेर कर हमला कर दिया। इस हमले में एबीवीपी के इकाई सचिव और उपाध्यक्ष समेत चार कार्यकर्ता घायल हो गए। घायल छात्रों को तुरन्त सफदरजंग अस्पताल पहुंचाया गया और साथ ही पुलिस में शिकायत दर्ज कराई गई। इस पूरी घटना से एक बार फिर जन-संघर्ष के पीछे छुपे खूनी हत्यारों की खतरनाक साजिश का पर्दाफाश हुआ। विश्वविद्यालय प्रशासन ने न तो एबीवीपी कार्यकर्ताओं की शिकायत सुनी और न ही डीएसयू को कार्यक्रम करने से रोका। बाद में पता लगा कि उन्होंने हमले की योजना पहले से बना रखी थी।

अगले दिन पूरे कैम्पस में इस घटना को लेकर बेहद रोष था। एबीवीपी की अगुआई में कैम्पस के सभी छात्र संगठनों और समूहों से सम्पर्क साधा गया और इस मुद्दे पर आम राय कायम की गई कि तमाम विरोध के बावजूद हम सब नक्सली हिंसा के विरोधी हैं। आम राय से 'स्टूडेंट्स एगेंस्ट नक्सलिज्म' नाम से एक फोरम का गठन किया गया और नक्सली हिंसा के विरोध में भारी विरोध, जुलूस का आह्वान किया गया। 11 अप्रैल की शाम पूरे कैम्पस में निकाले गए विरोध जुलूस में 400 से अधिक आम छात्र-छात्राओं ने हिस्सा लिया। ये विरोध जुलूस इस बात का प्रमाण था कि इस देश का आम छात्र और युवा माओवादी ताकतों और नक्सली हिंसा के खिलाफ है और राष्ट्रवादी ताकतों के साथ खड़ा है। बाद में स्टूडेंट्स एगेंस्ट नक्सलिज्म की तरफ से इंडिया गेट पर भी एक श्रद्धांजलि कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें 100 से अधिक छात्र-छात्रा उपस्थित थे। लेकिन देश के 265 जिलों तक पहुंच चुकी माओवाद-नक्सलवाद की ये आग देश के संवैधानिक ढांचे को सीधे चुनौती दे रही हे जिससे हर स्तर पर लड़े जाने की जरूरत है। एबीवीपी की अगुआई में बना 'स्टूडेंट्स एगेंस्ट नक्सलिज्म' नाम का ये फोरम माओवाद के खिलाफ अपनी लड़ाई जारी रखे हुए है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में वर्षों से परिषद् दोहराती आयी है- कदम-कदम पर लड़े हैं तुमसे, कदम-कदम पर लड़ेंगे तुमसे... संगठन के कार्यकर्ताओं को यह लड़ाई अब गांव-गांव और परिसर-परिसर में लड़नी होगी। ■

छेड़ना होगा आतंकवाद के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष

■ आशुतोष

दंतेवाड़ा में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के 76 जवानों की हत्या की घटना ने नक्सलवादियों के बढ़ते हौंसले और उससे निपटने के सरकार के अनियोजित और अधूरे प्रयासों को उजागर किया है। हमलों और हत्याओं का यह सिलसिला लगातार जारी है। प्रधानमंत्री और केन्द्रीय गृहमंत्री ने इसे देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती बताया है।

वर्षों से प्रतिदिन आने वाले, हमलों, हत्याओं और अत्याचारों के समाचारों ने संवेदनाओं को भौंथरा कर दिया है। भारत की धरती का आतंक से लहू-लुहान होना और प्रतिवर्ष सैकड़ों हजारों लोगों का आतंकवादी गतिविधियों के चलते दम तोड़ देना अब आश्चर्य पैदा नहीं करता। पिछले दो दशक में भारत के एक लाख से अधिक निर्दोष नागरिक इसके शिकार बने हैं, लाखों लोगों को विस्थापित होना पड़ा है। देश के लगभग 250 जिले नक्सलवादियों की गिरफ्त में हैं जहां स्थानीय प्रशासन भी हस्तक्षेप से हिचकता है।

दुनिया का पिछले दो हजार वर्षों का इतिहास संघर्ष का इतिहास हैं। भारत का इतिहास भी इससे कुछ अलग नहीं है। पिछले एक हजार साल से अधिक समय से भारत पर आक्रमणों का सिलसिला जारी है। ऐसा कोई समय नहीं रहा जब भारत आतंक से रू-ब-रू न रहा हो।

विश्व में धन और धरती के लिए छुट-पुट संघर्ष तो सभ्यता के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गये थे। किन्तु सामी (सेमेटिक) धर्मों के उदय, जिनके अनुयायियों का विश्वास एक ईश्वर, एक पवित्र पुस्तक और उसके एक पैगम्बर पर था, के साथ ही संघर्षों का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ जो पहले के संघर्षों से कहीं अधिक विस्तृत और अधिक भीषण था। यह अनुयायी श्रद्धालु भक्त ही नहीं बल्कि सैनिक भी थे जो अपने धर्म के विस्तार के लिए क्रूरता की किसी भी हद तक जा सकते थे।

दो हजार वर्ष पहले ईसाइयत के जन्म के साथ आतंक के बल पर मतान्तरण का जो सिलसिला प्रारंभ हुआ उसने पूरे यूरोप को अपने जाल में ले लिया। इसके छः सौ वर्ष बाद इस्लाम की स्थापना हुई और मक्का से उठी इस आंधी ने न केवल समूचे अरब बल्कि यूरोप के अनेक देशों को भी देखते ही देखते निगल लिया। इस आंधी में यहूदियों का एकमात्र देश इजराइल अपना अस्तित्व खो बैठा और लाखों इजराइली भारत सहित दुनिया के अनेक देशों में शरण लेने को बाध्य हुए। नाजी अत्याचारों के चलते लाखों यहूदी काल-कवलित हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों की सहायता से अपनी पुरानी भूमि पर इजरायलियों ने पुनः कब्जा किया जिसके परिणामस्वरूप फिलीस्तीन के लोगों को बेघर होना पड़ा। फिलीस्तीन के समर्थन में सभी अरब देशों ने संयुक्त संघर्ष किया किन्तु विश्व की महाशक्तियों के इजराइल के पाले में खड़े होने के कारण हार का मुंह देखना पड़ा।

एक बार यह अनुभव हो जाने के बाद कि पूरा अरब जगत मिलकर भी इजराइल से लोहा लेने में सक्षम नहीं है, फिलीस्तीनियों ने अपनी रणनीति बदली तथा उसके खिलाफ 'वार ऑफ लो इंटेंसिटी' प्रारंभ किया जो गुरिल्ला युद्ध का ही विकसित रूप था। अरब देशों का इसे समर्थन था। धीरे-धीरे इसने इजराइल और फिलीस्तीन के बीच के संघर्ष से बढ़कर अरब राष्ट्रों और पश्चिमी देशों तथा प्रकारान्तर से ईसाइयत और इस्लाम के बीच शताब्दियों से चले आ रहे संघर्ष का प्रकट रूप धारण कर लिया। इसके बाद शुरू हुआ दोनों सभ्यताओं के बीच निरंतर युद्ध का अंतहीन क्रम, जो आज भयावह दौर में पहुंच गया है और सारी दुनिया को अपनी चपेट में ले चुका है।

अरब देशों को यह 'वार ऑफ लो इंटेंसिटी' अधिक परिणामकारी लगा। अपने से अधिक बड़े और शक्तिशाली शत्रु के विरुद्ध अघोषित युद्ध का यह स्वरूप प्रतिपक्षी को नुकसान पहुंचाने, उसके नागरिकों के बीच भय उत्पन्न करने तथा उनका मनोबल तोड़ने, आतंक से पीड़ित नागरिकों को अपनी ही सरकारों के प्रति विद्रोही

बनाने आदि के द्वारा शत्रु को मनोवैज्ञानिक रूप से विचलित करने में सफल रहने के कारण इसका प्रयोग निरंतर जारी रहा। कुछ समय बाद सोवियत संघ द्वारा भी अफगानिस्तान में इसी प्रकार आतंक द्वारा सरकार को अस्थिर करने के प्रयास शुरू हुए।

इन कार्रवाइयों को प्राकृतिक न्याय के अनुकूल सिद्ध करने के लिए इसके पक्ष में तरह-तरह के सिद्धांत गढ़े गए। इसे दार्शनिक आधार दिया गया, पैगम्बर के आदेश से इसे जोड़ा गया तथा मरने वालों को जन्नत मिलने का विश्वास दिलाया गया। यहीं से आतंक के इस व्यापार को सैद्धांतिक आधार मिला और वह एक विचारधारा का रूप लेकर आतंकवाद कहलाया।

इधर द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत पर विभाजित हुए भारत में अदूरदर्शितापूर्ण राजनैतिक निर्णयों के कारण कश्मीर का मामला अनसुलझा रह गया जिसने पाकिस्तान के हाथ में निरंतर संघर्ष का बहाना थमा दिया। 1948 में उसने कबालियों के वेश में अपनी सेना को कश्मीर में घुसा कर घाटी कब्जाने की कोशिश की किन्तु असफल रहा। 1965 में पाकिस्तान ने प्रत्यक्ष युद्ध कर अपना जोर आजमाया लेकिन उसमें भी उसे मुंह की खानी पड़ी। 1971 में उसे अपना आधा हिस्सा गंवाना पड़ा। पाकिस्तान की सेना के एक लाख सैनिकों ने भारत की सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। बांग्लादेश का जन्म हुआ।

इन अनुभवों से पाकिस्तान को भी यह समझ में आया कि प्रत्यक्ष युद्ध में भारत को हरा पाना सम्भव नहीं है। 1965 में पाकिस्तान द्वारा थोपे गये युद्ध, जिसे उसने 'ऑपरेशन जिब्राल्टर' का नाम दिया था, मैं स्वयं की पराजय के बाद ही पाक ने युद्ध के विकल्पों पर सोचना शुरू कर दिया था। 1971 में शर्मनाक हार के बाद काबुल स्थित पाकिस्तान मिलिट्री अकादमी में सैनिकों को इस हार का बदला लेने की शपथ दिलाई गई।

आगे के कुछ वर्ष पाकिस्तान में राजनैतिक उथल-पुथल और अफगानिस्तान में सोवियत आक्रमण के कारण उसकी भारत विरोधी गतिविधियां कुछ कम रही है। अमेरिकी सहायता से उसने अफगानिस्तान में गुरिल्ला युद्ध को नियोजित किया। अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं के पलायन के बाद पाकिस्तान ने पुनः भारत की ओर निशाना साधा। अब उसके पास गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण पाये इस्लामिक आतंकवादियों का बल भी था और अमेरिका द्वारा दिये हुए हथियार भी। भारत में उसने खालिस्तान की मांग कर रहे लोगों के हाथों में हथियार थमा दिये और देखते ही देखते पंजाब जल उठा।

स्वर्ण मंदिर में हुए दुर्भाग्यपूर्ण ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार और उसके बदले की कार्रवाई के रूप में 31 अक्तूबर 1984 को श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद पंजाब में हिंसा का दौर थमा। पाकिस्तान ने एक बार फिर मुस्लिम बहुल कश्मीर पर नजर डाली जहां के स्थानीय राजनैतिक दलों का पाकिस्तान के प्रति झुकाव उन्हें आधार बनाने में सहायक था। इस सब को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन जनरल जिया-उल-हक ने 1988 में भारत के विरुद्ध 'ऑपरेशन टोपाक' नाम से 'वार विद लो इंटेंसिटी' की योजना बनाई।

इसी वर्ष जिया-उल-हक की विमान दुर्घटना में मृत्यु हो जाने के बाद यह योजना पूरी तरह सेना और आईएसआई के कुछ अधिकारियों के हाथ में आ गयी। इसके बाद कश्मीर में दंगे प्रारंभ हुए और उसके बाद आतंकवाद का सिलसिला चल पड़ा। कश्मीर घाटी में शताब्दियों से रह रहे हिन्दुओं को विस्थापित होकर दयनीय स्थितियों में देश के विभिन्न भागों में शरण लेनी पड़ी।

जब तक आतंकवाद का यह राक्षस सीमाओं पर अपना तांडव दिखा रहा था, सरकार ने इसे कुलचने के ठोस उपाय नहीं किये। गत कुछ वर्षों में इसने अपना विस्तार समूचे देश में कर लिया है किन्तु अब सरकार के प्रयास आतंकवाद से लड़ने में नाकाफी साबित हो रहे हैं।

इन वर्षों में सारी दुनियां के आतंकवादियों के बीच रिश्ते जुड़े हैं और इसका संगठित वैश्विक चेहरा सामने आ रहा है। केवल कश्मीर में ही गत एक दशक में तीस से अधिक देशों के आतंकवादी पकड़े या मारे गये हैं। जिस पाकिस्तान ने आतंकवाद की इस फसल को बोया और बरसों तक खाद-पानी दिया, वही अब इसे काटने को मजबूर है और अपने ही नागरिकों के खून से अपने इस पाप की कीमत चुका रहा है। लेकिन इससे भारत की समस्या का निदान नहीं होता। भारत को अपनी धरती से आतंकवाद के सफाये का सशक्त अभियान

छेड़ना होगा अन्यथा विकास के सारे आंकड़े इसकी भेंट चढ़ जायेंगे।

भारत के अंदर भी राष्ट्रविरोधी तत्वों के बीच खासा रिश्ता कायम हो चुका है। कश्मीर में नागालैंड तक और आंध्र से काठमांडू तक के उग्रवादी, अलगाववादी और वामपंथी नक्सली संगठनों के बीच ताल-मेल के सबूत मिल रहे हैं। बांग्लादेश और पाक अधिकृत कश्मीर में इन्हें प्रशिक्षण भी मिल रहा है और हथियार भी। पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई इस भारत विरोधी षड्यंत्र की मुख्य सूत्रधार है।

आतंकवाद का हर चेहरा समान रूप से खौफनाक है, चाहे उसे कितना भी चमत्कार बना कर प्रस्तुत किया जाय, चाहें विचारधारा और शब्दावली का कोई भी लबादा उसे ओढ़ा दिया जाय। आतंकवाद किसी भी रूप में हो, सभ्य समाज में स्वीकार्य नहीं है। छत्तीसगढ़ या बिहार के किसी सुदूर गांव में अपनी अदालत लगा कर उसमें किसी को भी छः इंच छोटा करने की सजा सुनाना उतना ही अमानुषिक तथा निंदनीय है जितनी अफगानिस्तान में तालिबानी बर्बरता। आतंकवाद को खांचों में नहीं बांटा जा सकता। अच्छा आतंकवाद और बुरा आतंकवाद जैसा भी कोई विभाजन सम्भव नहीं है। हत्या सोद्देश्य हो या निरुद्देश्य, चाहे उसके पीछे कितना ही मजबूत तर्क क्यों न पेश किया जाय, पाशविकता है, अपराध है।

दुनियां का सबसे नया पंथ मार्क्सवाद भी इसमें अपवाद नहीं है। एक किताब, एक पैगम्बर के संदेश के दम पर दुनियां भर के मजदूरों को एक-जुट करने का नारा देकर इसने भी अपने विस्तार के लिए पूर्वोक्त सभी सामी धर्मों का ही रास्ता पकड़ा है। सर्वाधिक चमकदार और मंजी हुई शब्दावली में आतंक को वाद के रूप में स्थापित करने का श्रेय तो इसे बुद्धिजीवी प्रतिनिधियों को देना ही होगा। भारत में नक्सवाद की जड़ें जमाने और उन्हें सींचने का काम मार्क्स के अनुयाइयों ने ही किया है। निर्दोष और निहत्थे लोगों के खिलाफ दुनियाभर में जारी हिंसा के इस अभियान में मार्क्सवादियों का बड़ा हिस्सा है।

नक्सलवादियों ने आतंक का साम्राज्य कायम करने के लिए अक्कूपल्ली के भूचन्द्रराव की हत्या करने के बाद महिलाओं के समूह के सामने उसके शव के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। एक हमलावर ने अपने हाथ मृतक के खून में भिगो कर दीवारों पर छापे लगाये जैसे किसी मंगल प्रसंग पर लगाये जाते हैं। एक अन्य घटना में मृतक का खून एक बर्तन में भरकर उससे दीवारों पर क्रांति सम्बंधी नारे लिखें गये। अम्बतिकाम्बरम गांव में हत्या के बाद मृतक के सिर को उसके घर के बाहर एक बांस के ऊपर लटका दिया गया।

चंगेज खां और बाबर जैसे हमलावरों द्वारा पराजित राज्यों के निर्दोष नागरिकों की हत्या कर उनके सिरों की मीनार बनाने, छत्तीसगढ़ में नक्सलवादियों द्वारा एक चार महीने की बच्ची के पेट में भाला घुसाकर उसे विजय चिन्ह की तरह लहराने और कश्मीर की किसी मासूम लड़की के साथ बलात्कार करने के बाद उसकी जांघों पर पाकिस्तान गोद देने और बाद में उसे विचारधारा का जामा पहनाने और क्रांति का उद्घोष बताने वाले हत्यारों की मानसिक विकृति के बीच क्या कोई फर्क किया जा सकता है।

क्रांति और जेहाद के नाम पर जारी इस हिंसक अभियान का सबसे बड़ा शिकार भारत ही है। इसके बावजूद देश में एक ऐसा वर्ग मौजूद है जो स्थापित लोकतांत्रिक मूल्यों का लाभ उठाते हुए आज भी शत्रु की भाषा बोल रहा है। चाहे वह संसद पर हमले का मामला हो अथवा बाटला हाउस की मुठभेड़, यह वर्ग सदैव आरोपियों के पक्ष में खड़ा नजर आता है। उनकी सहायता के लिए सार्वजनिक चन्दा करता है, जंतर-मंतर पर प्रदर्शन करता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में मोमबत्तियां लेकर आधी रात में जुलूस निकालता है और पुलिस और सेना के जवानों की सामूहिक हत्या पर जश्न मनाता है।

यह लड़ाई जो गत पांच दशकों से देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नामों से जारी आतंकवाद के विरुद्ध लड़ी जा रही है, वस्तुतः देश की अस्मिता एवं प्रभुसत्ता के संरक्षण की लड़ाई है। देश के छात्र-युवाओं को इसे सही सदर्भों में समझना होगा और अपनी भूमिका का निर्वहन करना होगा। ■

यूपीए सरकार का प्रतिगामी कदम

केन्द्र की यूपीए सरकार द्वारा 7 सितम्बर 2009 को एक टास्क फोर्स का गठन किया गया, जिसके द्वारा उच्च शिक्षा और अनुसंधान के लिये एक आयोग की स्थापना के रूप में यशपाल समिति और राष्ट्रीय ज्ञान आयोग का गठन किया गया।

'उच्च शिक्षा' सभी वर्ग के लिये केन्द्रीकृत रुप में व्यवहार होना चाहिये, व्यावसायिक शिक्षा सामान्य शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता है, ऐसा इसलिये होना आवश्यक है कि इंजीनियरिंग, मेडिकल, कृषि और कानून सहित सभी उच्च शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत लाया गया है, जो उच्च शिक्षा आयोग के गठन की सिफारिश की है। इसकी नियामक निकाय के अनुसार अकादमिक स्वतंत्रता और संस्थागत स्वायत्तता के साथ हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। यह निरीक्षण का सहारा नहीं लेकर अनुमोदन पद्धति पर आधारित होगा। यह एक सत्यापन और प्रमाणीकरण प्रणाली के लिये ले जाया जायेगा। विश्वविद्यालयों को स्वयं के लेखा नियामक निकायों और आयोग के लिये उत्प्रेरक एजेंसी के रुप में प्रत्येक विश्वविद्यालय के व्यक्तित्व के लिये अधिक से अधिक प्रतिस्थापित करने में ज्यादा रुची दिखाई दे रहा है।

यशपाल पैनल जोर देकर कहता है कि इन सभी के शैक्षिक कार्य व्यावसायिक निकाय उच्च शिक्षा के लिये एक शीर्ष सांविधक निकाय के अंतर्गत सम्मिलित हो सकता है। बल्कि पेशेवर संस्थानों को लाइसेंस देने में लगे हुये निकायों के रुप में अभिनय से वे लोग जो अपने संबंधित क्षेत्रों में लगे हुये है उनकी अच्छी की देखभाल होनी चाहिये।

एनसीएचईआर (NCHER) बिल एक तथाकथित उच्च शिक्षा के लिये आदेश लाने का प्रयास है। मुख्य शरीर आयोग के एक निर्णय का अधिकार है जिसे कॉलेजियम (collegium) करार दिया गया है। आयोग के अध्यक्ष और तीन सदस्यों के अलावें छः अन्य सदस्य होंगे । कॉलेजियम कोर और कूपटेड (coopted) लडका ( ) होगा। मुख्य साथी या तो एक राष्ट्रीय अनुसंधान के प्रोफेसर या नोबेल पुरस्कार विजेता या क्षेत्र पदक विजेता या ज्ञानपीठ पुरस्कार या अंतरराष्ट्रीय खडी की एक की एक अकादमी के सदस्य नहीं होंगे। मूल अधिकार के लिये लोगों के नामों के पैनल में से एक साथी कूप्ट (coopt) होगा जो राज्य या संघ राज्य क्षेत्रों का सिफारिस करेगा। यह स्पष्ट नहीं है कि कितने लोग मुख्य होंगें लेकिन वहां विजुयलाइजेज (visualises) कि कूपटेड संख्या करिब 30 होगा। एनसीएचईआर प्रारधिकार के लिये तंत्र और एक विश्वविद्यालय के अधिकार की अपनी एक निरसन हैं। संयोग से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पर मूल बिल 1953 में संसद में प्रस्तुत की गई थी जो ठीक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के साथ इन शक्तियों में निहित था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम में उपयुक्त प्रोविसस (provisos) के बाद में छोड दिया, क्योंकि राज्य सरकारों को लगा की वे राज्य के विकास के लिये योजना बनाने के लिये बेहतर पैरोकार रहे थे। उच्च शिक्षा ही देर से 70 में समवर्ती सुची का विजय बन गया। शिक्षा परिदृश्य और यह अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका को अब वैश्विक आयाम मिला है और देखना यह होगा कि राज्य सरकारों की कैसी प्रतिक्रिया आती है।

एनसीएचईआर बिल को शिक्षा, प्रशासन, मान्यता और विश्वविद्यालयों के लिये वित के क्षेत्र में मानदंड स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है। कॉलेजियम आयोग के लिये एक सलाहकार निकाय की व्यवस्था है । यह स्पष्ट नही है कि अपनी सिफारिशें आयोग के लिये बाध्य कर रहे हैं। वास्तव में पत्र नये विध यक में और आत्मा में ज्ञान आयोग और यशपाल समिति की सिफारिशों को प्रतिबिंबित नहीं कर रहे हैं। भावना, खो प्रस्तावना के रुप में यह

नहीं है कि वास्तव में चुनौतियों के व्यापक प्रचार कि खुलेपन, स्वतंत्रता और लचीलेपन हस्ताक्षर मंत्र है। वास्तव में सरल कानूनी ढांचे के इन तत्वों के अंडरपिनिंग (underpinning) के साथ रचना एक वर्तमान आवश्यकता है। यह सच है क्योंकि इस तरह एक कानूनी ढांचे के निर्माण का समर्थन चल रहें है और ऐसे शिक्षण संस्थानों का शासन है कि शिक्षण और अनुसंधान को और अधिक बनाना चाहिये। बड़ी चुनौतियों विशिष्ट शिक्षण, विशेष अनुसंधान और शिक्षण निजी और सार्वजनिक मोड़ के तहत विश्वविद्यालयों और अनुसंधान, वर्दी मॉड्यूलर क्रेडिट के निर्माण के लिये अंतरिक्ष पैदा कर रहे हैं। यह एक आधारित डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करने के लिये अनुमति देता है कि संरचना विषयों में विषयों के चयन की स्वतंत्रता और स्वतंत्र आंदोलन की सुविधा के विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्रों के बीच हमारे लिये चुनौती बुनियादी सुविधाओं से युक्त है और व्यापक उपयोग की बात करते है कि सेवा के छात्रों की संख्या लगातार बढ रही दोनों के लिये शैक्षिणक और भौतिकता से संबंधित मुद्दों के समाधान में निहित है। हमें भी पीपीपी और विशिष्ट निजि शिक्षा प्रदाताओं के लिये संरचना को सक्षम बनाना है। एनसीएचईआर विधेयक में प्रावधान का कोई बड़ा मतलब नहीं है, जिसके रुप में ऊपर के परिसर पर पृष्ठभूमि बनाया गया है। अंत में मेडिकल या कानून और कृषि तथा अन्य एनसीएचईआर के दायरे से बाहर अन्य परिषदों में शामिल विषयों के मेजबान एक अच्छा शुभ संकेत नहीं है। क्या भारत की जरूरत है शिक्षा के सभी पहलुओं के लिये एक समग्र दृष्टिकोण है नहीं यह एक खंडित दृष्टिकोण है। एनसीएचईआर को स्थापित करने के प्रस्ताव उच्च शिक्षा के केंद्रीकरण के प्रति केंद्र सरकार की प्रवृति को दर्शाता है । यह अपने संबंधित क्षेत्रों में उच्च शिक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने और देश में रुप में राज्य सरकारों और शिक्षाविदों की भूमिका को नजरअंदाज किया है। यह भारत में उच्च शिक्षा के विकास के लिये प्रतिगामी साबित होगा। इसलिये सभी हितधारकों को केंद्र सरकार को जवाब देते हुये इस आयोग की स्थापना का विरोद्ध करना चाहिये।■

स्मृति मंजूषा

शैक्षणिक क्रान्ति के लिए छात्र एक मंच पर संगठित हों

'समस्त विद्यार्थी आन्दोलन को एक ऐसी नयी रचनात्मक दिशा प्रदान की जाए जो जाति या सम्प्रदाय से ऊपर उठकर शैक्षणिक क्रान्ति के लिए समस्त छात्र समुदाय को एक स्नेह सूत्र में बांध कर संगठित करे। विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में अराजकता का वातावरण समाप्त करने के लिए आगे बढ़ें। कुछ मुट्ठी भर छात्र जिनकी पढ़ाई में कोई दिलचस्पी नहीं होती है शिक्षण संस्थाओं को उजाड़ रहे हैं। आज विश्वविद्यालय परिसरों में भय का वातावरण व्याप्त है और शिक्षक तक इससे बरी नहीं होते हैं। विशेषकर उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में स्थिति कहीं ज्यादा खराब है। विश्वविद्यालय परिसरों में शान्ति व अनुशासन कायम करने के लिए विद्यार्थी परिषद के प्रयासों की भूमिका सराहनीय है।'

(फरवरी 1979 के अंक में अभिव्यक्त जय प्रकाश नारायण के विचार)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने उक्त उद्गार 17 फरवरी 1979 को अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद द्वारा पटना में आयोजित एक विशेष समारोह में व्यक्त किए तथा एक 'जागरण ज्योति' प्रज्ज्वलित की। यह ज्योति बिहार के विद्यार्थियों का जत्था लगभग 100 स्थानों पर मार्ग में रुकते हुए 6 मार्च को प्रात: दिल्ली में राजघाट स्थित गांधी समाधि पर पहुंचेगा। पटना से दिल्ली तक 'जागरण ज्योति' की सफल यात्रा के लिए भी जयप्रकाश नारायण ने अपनी शुभकामनाएं व्यक्त की।

इस बार पुन: 6 मार्च परिवर्तन के लिए युवा पीढ़ी के राष्ट्रीय संकल्प का प्रतीक दिवस बन जाएगा।

दंतेवाड़ा में हुए नरसंहार पर इंडिया गेट प्रदर्शन करते हुए अभाविप के कार्यकर्ता एवं जेएनयू में ध्वजारोहण

दंतेवाड़ा में हुए नक्सली हमले के विरोध में इंडिया गेट पर प्रदर्शन करते जेएनयू इकाई के कार्यकर्ता

जेएनयू में तिरंगा फहराते हुए अभाविप के कार्यकर्ता

यूपीएससी से प्रधानाचार्य की मांग करते तिबिया कालेज के अभाविप के कार्यकर्ता

तिबिया कालेज में प्राचार्य के खिलाफ प्रदर्शन करते हुए अभाविप के कार्यकर्ता

आर.एन.आई. नं. 32464/78

विनायक दामोदर सावरकर

(28 मई, 1883-26 दिसम्बर, 1966)